डा० राजेंद्र सिंह,जलपुरुष
डा. भरत राज सिंह, पर्यावरणविद

अरावली : भारत की जीवन-रेखा —

न्यायिक, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और पर्यावरण संरक्षण

डा० राजेंद्र सिंह, जलपुरुष
डा. भरत राज सिंह, पर्यावरणविद

अरावली : भारत की जीवन-रेखा —
न्यायिक, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और पर्यावरण संरक्षण

तरुण भारत संघ, अलवर, राजस्थान
व
वैदिक विज्ञानं केंद्र व सी. वी. रमन अनुसंधान एवं नवाचार केन्द्र
SMS LUCKNOW स्कूल ऑफ़ मैनेजमेंट साइंसेज, लखनऊ

अरावली : भारत की जीवन-रेखा — न्यायिक, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और पर्यावरण संरक्षण

प्रकाशित: सितम्बर 2026
संस्करण: प्रथम
ISBN: 978-93-6581-307-4

विवरण:
यह पुस्तक अरावली पर्वत-तंत्र के संरक्षण पर केंद्रित एक महत्वपूर्ण कृति है। इसमें न्यायिक निर्णयों, वैज्ञानिक तथ्यों और पर्यावरणीय दृष्टिकोण के समन्वय से अरावली की पारिस्थितिक महत्ता को समझाया गया है। जल, मृदा, भूजल, वन, जैव-विविधता, वन्यजीव और स्थानीय समुदायों के जीवन में इसकी भूमिका रेखांकित की गई है। पुस्तक विकास और संरक्षण के संतुलन, खनन-प्रभावित क्षेत्रों के पुनर्स्थापन तथा विज्ञान, कानून और जनभागीदारी के माध्यम से अरावली को भारत की जल-सुरक्षा, पर्यावरणीय संतुलन और सनातन भविष्य की जीवन-रेखा के रूप में सुरक्षित रखने का मार्ग प्रस्तुत करती है।

लेखक:
डा.राजेन्द्र सिंह, जलपुरुष
तरुण भरत संघ, जयपुर, राजस्थान
व
प्रोफ.(डा.) भरत राज सिंह, पर्यावरणविद व महानिदेशक,
वैदिक विज्ञानं केंद्र व सी. वी. रमन अनुसंधान एवं नवाचार केन्द्र ,
स्कूल ऑफ़ मैनेजमेंट साइंसेज, लखनऊ – 226501

पुस्तक मूल्य: भारत ₹**299;** USD $**3.15**
Copyright: © 2026 Rajendra Singh, Bharat Raj Singh
अस्वीकरण:
पुस्तक में निहित विषयवस्तु, तथ्य, विचार अथवा विश्लेषण के लिए उसके लेखक पूर्ण रूप से उत्तरदायी हैं। इसके समस्त अधिकार भी लेखक व संपादक के पास सुरक्षित हैं। प्रकाशक की विषयवस्तु के प्रति सहमति और उत्तरदायित्व नहीं है। पुस्तक या उसके किसी भी अंश का पुनर्प्रस्तुतिकरण किसी भी माध्यम से स्वीकार्य नहीं होगा। चाहे यांत्रिक माध्यम हो या इलैक्ट्रॉनिक; जानकारी का संचयन लिखित आज्ञा लिए बिना नहीं किया जाना चाहिए। केवल एक समीक्षक को समीक्षा में आंशिक उदधृत करने की छूट रहेगी।

प्रकाशक:
NATALS **Natals Publication.**
UDYAM-DL-02-0037614
Chhatarpur, SouthWest Delhi-110074,India
E-mail:natalspublications@gmail.com

Copyright © 2026 natals.in

समर्पित

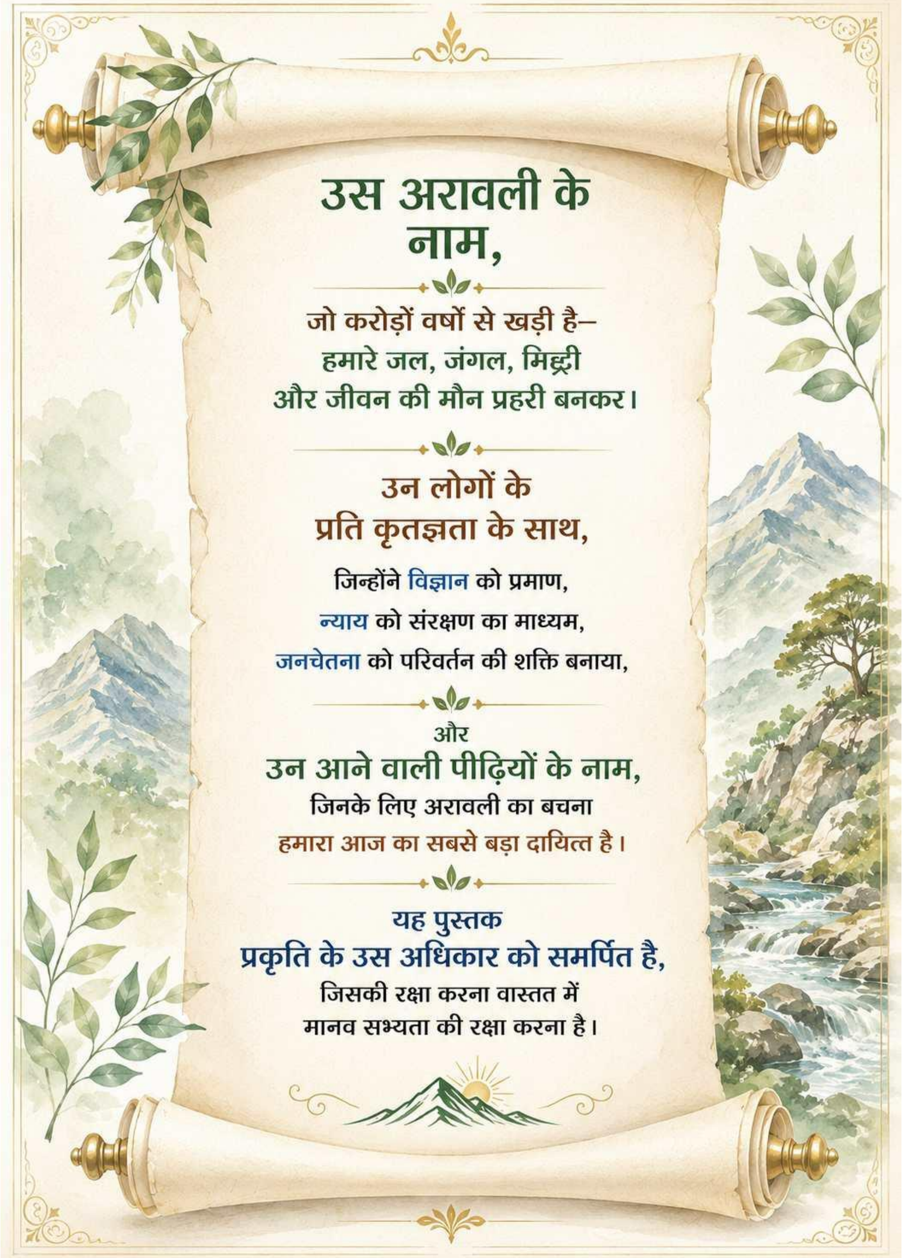
उस अरावली के नाम,
जो करोड़ों वर्षों से खड़ी है–
हमारे जल, जंगल, मिट्टी
और जीवन की मौन प्रहरी बनकर।
उन लोगों के
प्रति कृतज्ञता के साथ,
जिन्होंने विज्ञान को प्रमाण,
न्याय को संरक्षण का माध्यम,
जनचेतना को परिवर्तन की शक्ति बनाया,
और
उन आने वाली पीढ़ियों के नाम,
जिनके लिए अरावली का बचना
हमारा आज का सबसे बड़ा दायित्त है।
यह पुस्तक
प्रकृति के उस अधिकार को समर्पित है,
जिसकी रक्षा करना वास्तत में
मानव सभ्यता की रक्षा करना है।

प्रस्तावना

अरावली : पर्वत से आगे, जीवन की धारा

अरावली को बचाने की चिंता केवल पहाड़ों को बचाने की चिंता नहीं है। यह पानी को बचाने, मिट्टी को बचाने, जंगलों और जैव-विविधता को बचाने तथा आने वाली पीढ़ियों के लिए जीवन के आधार को सुरक्षित रखने की चिंता है। इसी व्यापक दृष्टि के साथ यह पुस्तक प्रस्तुत की जा रही है।

— डॉ. राजेन्द्र सिंह 'जलपुरुष' एवं डॉ. भरत राज सिंह 'पर्यावरणविद्'

अरावली भारत की सबसे प्राचीन पर्वत प्रणालियों में से एक है। किंतु इसकी महत्ता केवल इसके भू-वैज्ञानिक इतिहास में नहीं है। इसकी वास्तविक शक्ति उन अनगिनत प्राकृतिक प्रक्रियाओं में है, जो इसकी पहाड़ियों, ढलानों, जंगलों, घाटियों, चट्टानी भू-भागों, जलग्रहण क्षेत्रों और इनके बीच के प्राकृतिक भू-दृश्य के माध्यम से संचालित होती हैं। वर्षा का जल रोकना, उसे भूमि में पहुंचाना, मिट्टी को थामना, भूजल पुनर्भरण में सहायता करना, जैव-विविधता को आश्रय देना, वन्यजीवों के आवागमन के लिए प्राकृतिक मार्ग उपलब्ध कराना और मरुस्थलीकरण के प्रभावों को नियंत्रित करना—ये सभी अरावली के जीवनदायी कार्य हैं। इसीलिए जब अरावली की कानूनी परिभाषा पर प्रश्न उठता है, तो वह केवल किसी नक्शे पर सीमा-रेखा खींचने का प्रश्न नहीं रह जाता। यह प्रश्न बन जाता है कि हम प्रकृति को किस दृष्टि से देखते हैं—क्या प्रकृति को कुछ निश्चित संख्याओं, ऊंचाइयों और दूरी के मानकों में सीमित किया जा सकता है, अथवा उसकी पहचान उसके समग्र पारिस्थितिक कार्य और प्राकृतिक निरंतरता के आधार पर की जानी चाहिए?
यह पुस्तक इसी महत्वपूर्ण प्रश्न को केंद्र में रखकर लिखी गई है।

20 नवम्बर 2025 का सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय अरावली के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण न्यायिक पड़ाव था। इसमें अरावली की पहाड़ियों और अरावली पर्वतश्रे-णी की एक समान कार्यात्मक परिभाषा स्वीकार की गई, जिसमें 100 मीटर के स्थानीय ऊँचाई-अंतर और 500 मीटर की दूरी जैसे मानदंड प्रमुख थे। साथ ही सतत खनन योजना, संरक्षित मूल एवं अछूते क्षेत्रों की पहचान तथा अवैध खनन पर नियंत्रण जैसे उपायों को भी महत्व दिया गया। पुस्तक में यह स्पष्ट किया गया है कि इस निर्णय को केवल "100 मीटर से अधिक ऊँची पहाड़ियों की सुरक्षा" के रूप में समझना उचित नहीं होगा; सहायक ढलानें और उनसे जुड़े भूभाग- भी उस व्यवस्था का हिस्सा थे।

फिर भी इस व्यवस्था ने एक मूलभूत वैज्ञानिक प्रश्न को जन्म दिया—क्या अरावली जैसे अत्यंत पुराने और प्राकृतिक क्षरण से परिवर्तित पर्वतीय तंत्र की पहचान केवल ऊंचाई के आधार पर पर्याप्त रूप से की जा सकती है?

हम दोनों लेखकों की दृष्टि में यह प्रश्न अत्यंत गंभीर है—किसी पहाड़ी की ऊँचाई कम हो सकती है, लेकिन उसका पर्यावरणीय महत्व बहुत बड़ा हो सकता है। वह किसी जलग्रहण क्षेत्र का हिस्सा हो सकती है; उसके नीचे भूजल का पुनर्भरण हो सकता है; उसकी ढलानों से वर्षा का पानी किसी तालाब, नदी या जलभृत तक पहुँच सकता है; उसके जंगल और झाड़ीदार क्षेत्र वन्यजीवों के लिए आवास या गलियारे का काम कर सकते हैं। इसलिए किसी प्राकृतिक भूआकृति का मूल्य केवल उसके - कि पुस्तक मीटर में मापे गए कद से निर्धारित नहीं किया जा सकता। यही कारण है में अरावली की पहचान के लिए भूविज्ञान, भूआकृति विज्ञान-, मृदा, जल, जैव-विविधता, वन्यजीव गलियारा अथवा वन्यजीव संपर्कता, भूमि क्षरण और मानव निर्भरता जैसे अनेक पहलुओं को साथ देखने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। वर्ष 2026 में विशेषज्ञ समीक्षा की दिशा में भी बहुविषयक दृष्टिकोण- सामने आया—भूविज्ञान, मृदा, जैवविविधता-, वनस्पति, जीवजंतु-, प्राकृतिक संसाधन और वैज्ञानिक भूमानचित्रण- को साथ लेकर चलने की आवश्यकता स्वीकार की गई।

29 दिसम्बर 2025 का सर्वोच्च न्यायालय का आदेश इस विमर्श में एक और महत्वपूर्ण मोड़ लेकर आया। 20 नवम्बर की व्यवस्था को फिलहाल स्थगित रखते हुए स्वतंत्र विशेषज्ञ समीक्षा की आवश्यकता पर जोर दिया गया। इससे यह संदेश स्पष्ट हुआ कि इतने दूरगामी पर्यावरणीय प्रभाव वाले विषय में किसी परिभाषा को अंतिम रूप देने से पहले उसके वास्तविक पारिस्थितिक प्रभावों को वैज्ञानिक रूप से समझना आवश्यक है।

हमारे लिए इस पूरे न्यायिक घटनाक्रम की सबसे महत्वपूर्ण सीख यही है कि कानून को प्रकृति की वास्तविकता के साथ चलना होगा।

कानून को स्पष्टता चाहिए, लेकिन प्रकृति को केवल संख्याओं में नहीं बाँधा जा सकता। 100 मीटर प्रशासनिक सुविधा का एक मानदंड हो सकता है; 500 मीटर मानचित्रण का एक आधार हो सकता है; परंतु अरावली की पूरी पारिस्थितिक पहचान इन दोनों से कहीं व्यापक है। पुस्तक में इसी कारण भूदृश्य आधारित - दृष्टिकोण पर जोर दिया गया है—पहाड़ी को उसकी ढलान, घाटी, जलग्रहण क्षेत्र, जंगल, मृदा, भूजल और जैवविविधता से अलग करके नहीं देखा जा सकता।-

अरावली और जल : हमारी साझा चिंता

हम दोनों की कार्य-यात्राओं के क्षेत्र भले अलग दिखाई दें, लेकिन उनका मूल उद्देश्य एक ही है—प्रकृति और मानव जीवन के बीच संतुलन स्थापित करना।

एक जल-कार्यकर्ता के रूप में हमने बार-बार देखा है कि किसी क्षेत्र का जल संकट केवल वर्षा की कमी का परिणाम नहीं होता। जल संकट अक्सर तब गहराता है जब प्राकृतिक जलग्रहण क्षेत्र नष्ट होते हैं, मिट्टी की जलधारण क्षमता घटती है, पारंपरिक जलस्रोत सूखते हैं और भूजल पुनर्भरण के प्राकृतिक मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं। अरावली को इसी जल-दृष्टि से देखना आवश्यक है।

अरावली की पहाड़ियाँ केवल चट्टानें नहीं हैं। वे एक विशाल प्राकृतिक जलग्रहण तंत्र का हिस्सा हैं। इसलिए इसकी ढलानों, प्राकृतिक नालों, मौसमी धाराओं, तालाबों और भूजल पुनर्भरण क्षेत्रों की रक्षा करना अरावली संरक्षण का अनिवार्य हिस्सा होना चाहिए। जहाँ खनन ने प्राकृतिक जल-निकास तंत्र को बदल दिया है, वहाँ केवल गड्ढे भर देना पुनर्स्थापन नहीं है; वहाँ जलवैज्ञानिक पुनर्स्थापन की आवश्यकता है। जोहड़, तालाब, समोच्च-आधारित जल संचयन और प्राकृतिक **जल अंतःस्रवण** को स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार पुनर्जीवित करना अरावली के संरक्षण को जल-सुरक्षा से जोड़ सकता है। इसका लाभ केवल जंगल को नहीं, बल्कि किसानों, पशुपालकों, गाँवों और शहरों को भी मिलेगा।

विकास और संरक्षण : संघर्ष नहीं, संतुलन

अरावली क्षेत्र में खनन और उससे जुड़ी आर्थिक गतिविधियों का प्रश्न भी वास्तविक है। हजारों परिवारों की आजीविका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्राकृतिक संसाधनों से जुड़ी हो सकती है। इसलिए पर्यावरण संरक्षण के नाम पर स्थानीय समाज की आजीविका की वास्तविकता को अनदेखा करना उचित नहीं होगा। लेकिन दूसरी ओर यह भी उतना ही सत्य है कि अनियंत्रित खनन यदि पहाड़, जल, मिट्टी और वनस्पति को स्थायी रूप से नष्ट कर देता है, तो उसका सबसे बड़ा भार अंततः स्थानीय समाज को ही उठाना पड़ता है।

इसलिए प्रश्न "खनन बनाम पर्यावरण" का नहीं होना चाहिए। वास्तविक प्रश्न होना चाहिए—

कहाँ खनन बिल्कुल नहीं होना चाहिए, कहाँ सीमित और वैज्ञानिक गतिविधि संभव है, कहाँ पुनर्स्थापन अनिवार्य है और कहाँ विकास की पारिस्थितिक वहनक्षमता-समाप्त हो चुकी है—पुस्तक में इसी दिशा में संरक्षण नीति को देखने का आग्रह किया गया है। यही सतत विकास का वास्तविक अर्थ है। विकास वह नहीं, जो आज की अर्थव्यवस्था को मजबूत करके कल की प्राकृतिक सुरक्षा छीन ले। विकास वह है जिसमें वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताएँ पूरी हों और भविष्य की पीढ़ियों के लिए जल, भूमि, जंगल और जैवविविधता सुरक्षित रहें।-

अरावली और जनभागीदारी
अरावली का भविष्य केवल न्यायालयों, सरकारी विभागों या विशेषज्ञ समितियों से तय नहीं होगा। इस प्रक्रिया में स्थानीय समाज की भागीदारी अनिवार्य है। एक गांव का किसान जानता है कि वर्षा का पानी किस दिशा में बहता है। एक पशुपालक जानता है कि किस वन क्षेत्र में चारा उपलब्ध है। स्थानीय निवासी जानते हैं कि कौन-सा प्राकृतिक नाला वर्षा में सक्रिय होता है। खनन क्षेत्र में काम करने वाला श्रमिक जानता है कि स्थानीय अर्थव्यवस्था किन गतिविधियों पर निर्भर है। इसलिए संरक्षण की नीति में स्थानीय ज्ञान को वैज्ञानिक ज्ञान का विरोधी नहीं, बल्कि उसका सहयोगी माना जाना चाहिए।

सर्वोच्च न्यायालय की 2026 की विशेषज्ञ प्रक्रिया में ग्रामीणों, किसानों, खनन श्रमिकों, स्थानीय समुदायों, पर्यावरणविदों, संरक्षणवादियों, गैर-सरकारी संगठनों तथा खनन से जुड़े हितधारकों सहित विभिन्न वर्गों की भागीदारी पर जोर दिया गया है। यह एक महत्वपूर्ण दिशा है, क्योंकि पर्यावरणीय न्याय तभी स्थायी बन सकता है जब संरक्षण का निर्णय लोगों के साथ मिलकर लिया जाए, केवल लोगों पर थोपा न जाए।

संरक्षण को स्थानीय रोजगार से भी जोड़ा जा सकता है। क्षतिग्रस्त खनन क्षेत्रों का पुनर्स्थापन, देशज वनस्पतियों का विकास, पौधशाला स्थापना, जल-संचयन, मृदा संरक्षण, जैव-विविधता की निगरानी तथा प्रकृति-आधारित आजीविका के क्षेत्रों में स्थानीय युवाओं को प्रशिक्षित किया जा सकता है। इस प्रकार पर्यावरण संरक्षण स्वयं स्थानीय अर्थव्यवस्था का आधार बन सकता है।

केवल संरक्षण नहीं—पुनर्जीवन
अरावली को बचाने का अर्थ केवल आगे होने वाले नुकसान को रोकना नहीं है। जहाँ क्षति हो चुकी है, वहाँ पुनर्स्थापन और पारिस्थितिक पुनर्जीवन भी आवश्यक है। पुरानी खदानों को केवल मिट्टी से भर देना पर्याप्त नहीं होगा। उनकी भू-आकृति, जल-प्रवाह, मृदा, वनस्पति और भूजल पर प्रभाव का अध्ययन करके स्थल-विशिष्ट पुनर्स्थापन योजना बनानी होगी। स्थानीय देशज प्रजातियों की पुनर्स्थापना, प्राकृतिक जल-निकास की वापसी, मृदा संरक्षण, जल-संचयन और वन्यजीव आवास की पुनर्बहाली को एकीकृत किया जाना चाहिए।

पुस्तक में अरावली हरित दीवा**र** तथा अन्य पुनर्स्थापन पहलों को इसी व्यापक संदर्भ में देखा गया है। उपलब्ध कार्ययोजनाओं में क्षतिग्रस्त वनों, झाड़ीदार क्षेत्रों, कृषि एवं सामुदायिक भूमि तथा परित्यक्त और खनन से क्षतिग्रस्त क्षेत्रों के पारिस्थितिक पुनर्स्थापन पर बल दिया गया है। हमारा विश्वास है कि अरावली की वास्तविक सफलता इस बात से नहीं मापी जाएगी कि कितने पौधे लगाए गए। सफलता का

वास्तविक माप यह होगा कि कितने जलग्रहण क्षेत्र पुनर्जीवित हुए, कितना भूजल पुनर्भरण सुधरा, मृदा का कटाव कितना घटा, कितने वन्यजीव गलियारे सुरक्षित हुए और कितनी क्षतिग्रस्त भूमि ने अपना पारिस्थितिक कार्य पुनः प्राप्त किया।

विज्ञान, न्याय और संवेदना का संगम

इस पुस्तक का मूल उद्देश्य किसी पक्ष को विजयी घोषित करना नहीं है। इसका उद्देश्य उस संतुलित दृष्टिकोण को सामने लाना है, जिसमें न्यायपालिका की संवैधानिक भूमिका, विज्ञान की प्रमाणिकता, पर्यावरणीय नैतिकता और समाज की आवश्यकताएँ एक साथ दिखाई दें।

सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक प्रक्रिया ने यह महत्वपूर्ण बात सामने रखी है कि प्राकृतिक संसाधनों की कानूनी परिभाषा स्वयं संरक्षण का साधन बन सकती है। इसलिए अरावली की सीमा तय करना केवल तकनीकी मानचित्रण की प्रक्रिया नहीं है। उसके भीतर आने वाली भूमि के उपयोग, खनन, निर्माण, जल और जैव-विविधता पर इसका दूरगामी प्रभाव हो सकता है। इसी कारण वैज्ञानिक प्रमाण, पारदर्शी मानचित्रण, स्वतंत्र मूल्यांकन और समय-समय पर निगरानी आवश्यक हैं। पुस्तक में उपग्रह-आधारित आकलन, भूजल निगरानी, जैव-विविधता सर्वेक्षण और पुनर्स्थापन के मूल्यांकन जैसी व्यवस्थाओं की आवश्यकता पर भी बल दिया गया है। हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि अरावली का संरक्षण एक बार का कार्य नहीं है। यह एक निरंतर और दीर्घकालिक प्रक्रिया है।

आने वाली पीढ़ियों के नाम

अरावली की सबसे बड़ी परीक्षा आज हमारे सामने है।
हमारे पास दो रास्ते हैं। पहला—हम अरावली को केवल भूमि, पत्थर, खनिज और निर्माण की दृष्टि से देखें और धीरे-धीरे उसके प्राकृतिक कार्यों को कमजोर होने दें। दूसरा—हम उसे एक जीवित पारिस्थितिक आधारभूत तंत्र के रूप में पहचानें और उसके संरक्षण, पुनर्जीवन तथा सतत उपयोग के लिए विज्ञान, कानून और समाज को साथ लेकर चलें। हम दूसरा रास्ता चुनने की अपील करते हैं—क्योंकि अरावली केवल राजस्थान की नहीं है। यह हरियाणा, दिल्ली, गुजरात और उससे आगे फैले व्यापक प्राकृतिक तंत्र का हिस्सा है। इसकी सुरक्षा का अर्थ केवल कुछ पहाड़ियों को बचाना नहीं, बल्कि जल, वायु, मृदा, वन्यजीव और मानव जीवन के बीच उस प्राकृतिक संबंध को बचाना है, जिसे प्रकृति ने हजारों-लाखों वर्षों में विकसित किया है।

आज जब जलवायु परिवर्तन, अनिश्चित वर्षा, सूखा, अचानक भारी वर्षा, भूजल संकट और भूमि क्षरण जैसी चुनौतियाँ बढ़ रही हैं, तब अरावली को जलवायु अनुकूलन के

प्राकृतिक आधारभूत तंत्र के रूप में भी देखना आवश्यक है। पुनर्स्थापन की सफलता को केवल **हरित आवरण** से नहीं, बल्कि मृदा की नमी, भूजल पुनर्भरण, मृदा कटाव में कमी, सूखा-रोधक क्षमता और स्थानीय पर्यावरणीय परिस्थितियों में सुधार जैसे संकेतकों से मापा जाना चाहिए।

इसलिए इस पुस्तक का संदेश सरल है, लेकिन अत्यंत गहरा है—

अरावली को केवल उसकी ऊंचाई से मत पहचानिए।
उसे उसके जल से पहचानिए।
उसकी मिट्टी से पहचानिए।
उसके जंगलों और जैव-विविधता से पहचानिए।
उसके जलग्रहण क्षेत्रों से पहचानिए।
उसके वन्यजीव गलियारे से पहचानिए।
और सबसे बढ़कर, उस जीवन से पहचानिए जिसे वह पीढ़ियों से सहारा देती आई है।

यदि कानून अरावली की रक्षा करना चाहता है तो उसे प्रकृति की वास्तविकता को समझना होगा। यदि विज्ञान अरावली को समझना चाहता है तो उसे स्थानीय समाज के अनुभवों को सुनना होगा। यदि समाज अरावली को बचाना चाहता है तो उसे संरक्षण को अपनी आजीविका और जलसुरक्षा से जोड़ना होगा। और यदि विकास - तो उसे अरावली की को टिकाऊ बनाना है पारिस्थितिक वहन क्षमता (ecological carrying capacity) का सम्मान करना होगा।

हम आशा करते हैं कि यह पुस्तक न्यायपालिका, नीति-निर्माताओं, वैज्ञानिकों, पर्यावरणविदों, जल-कार्यकर्ताओं, विद्यार्थियों, शोधकर्ताओं, स्थानीय समुदायों और सामान्य नागरिकों के बीच एक सार्थक संवाद का आधार बनेगी। यह पुस्तक किसी अंतिम उत्तर का दावा नहीं करती। बल्कि यह उन प्रश्नों को सामने लाती है जिनके उत्तर अरावली के भविष्य को निर्धारित करेंगे।अरावली की रक्षा केवल पहाड़ बचाने का अभियान नहीं है—यह भारत के जल, पर्यावरण और आने वाली पीढ़ियों के जीवन की रक्षा का संकल्प है। इसी विश्वास के साथ यह पुस्तक पाठकों को समर्पित है।

— लेखक

डॉ. राजेन्द्र सिंह 'जलपुरुष'
जल-संरक्षण कार्यकर्ता एवं पर्यावरण चिंतक
डॉ. भरत राज सिंह 'पर्यावरणविद्'
शिक्षाविद् एवं शोधकर्ता

आभार

यह पुस्तक **“अरावली और न्यायपालिका”** केवल दो लेखकों का प्रयास नहीं, बल्कि जल, जंगल, जमीन, पर्यावरण, न्याय और जनभागीदारी से जुड़े अनेक व्यक्तियों और संस्थाओं के सामूहिक अनुभव, सहयोग और प्रेरणा का परिणाम है। इस पुस्तक के माध्यम से हमारा प्रयास अरावली को केवल एक पर्वत-श्रृंखला के रूप में नहीं, बल्कि जल, जीवन, जैव-विविधता, आजीविका और आने वाली पीढ़ियों की सुरक्षा-कवच के रूप में समझने और समझाने का है। पुस्तक की मूल दृष्टि भी यही है कि अरावली का संरक्षण केवल पहाड़ियों को बचाने का विषय नहीं, बल्कि जल-सुरक्षा और पारिस्थितिक संतुलन की रक्षा का प्रश्न है।

सर्वप्रथम हम **सर्वोच्च न्यायालय, भारत** के प्रति अपनी गहरी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं, जिसने अरावली की परिभाषा, खनन, पर्यावरणीय प्रभाव, वैज्ञानिक समीक्षा और संरक्षण से जुड़े प्रश्नों को गंभीर न्यायिक विमर्श का विषय बनाया। 20 नवम्बर 2025 से प्रारंभ हुई न्यायिक प्रक्रिया तथा उसके बाद की कार्यवाहियों ने यह स्पष्ट किया कि अरावली की कानूनी पहचान केवल नक्शे पर सीमा निर्धारित करने का विषय नहीं, बल्कि उसके दूरगामी पर्यावरणीय प्रभावों से जुड़ा प्रश्न है। विशेष रूप से न्यायालय द्वारा स्वतंत्र एवं बहु-विषयक विशेषज्ञ समीक्षा की दिशा में बढ़ाया गया कदम इस विषय के वैज्ञानिक और पारिस्थितिक महत्व को रेखांकित करता है।

हम केंद्रीय अधिकार प्राप्त समिति, भारतीय वन सर्वेक्षण विभाग, भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय तथा विभिन्न विशेषज्ञ समितियों और वैज्ञानिक संस्थानों के प्रति भी आभार व्यक्त करते हैं, जिनके अध्ययनों और वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने अरावली की भू-आकृति, भू-विज्ञान, मिट्टी, जल, जैव-विविधता, वन्यजीव गलियारों और पारिस्थितिकीय संपर्कता को समझने में महत्वपूर्ण आधार प्रदान किया है। अरावली की वास्तविक पहचान को केवल एक संख्या नहीं, बल्कि अनेक वैज्ञानिक मानकों के समन्वय से समझने की आवश्यकता इसी व्यापक विमर्श से सामने आती है।

इस पुस्तक के संदर्भ में हमारा विशेष और हृदयपूर्ण आभार **तरुण भारत संघ** से जुड़े सभी साथियों के प्रति है। जल-संरक्षण, पारंपरिक जलस्रोतों के पुनर्जीवन, समुदाय-आधारित प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन और ग्रामीण सहभागिता के क्षेत्र में वर्षों से जुड़े सभी कार्यकर्ताओं, जल-सैनिकों, स्वयंसेवकों, ग्रामवासियों और सहयोगियों ने हमें यह समझने की प्रेरणा दी है कि जल-संरक्षण केवल तकनीकी कार्य नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना और सामुदायिक जिम्मेदारी का आंदोलन है।

तरुण भारत संघ से जुड़े प्रत्येक साथी—चाहे वह गांव में जलस्रोतों के पुनर्जीवन के लिए कार्य कर रहा हो, जलग्रहण क्षेत्र की रक्षा में लगा हो, स्थानीय समुदायों को संगठित कर रहा हो अथवा जल-जंगल-जमीन के संरक्षण की आवाज उठा रहा हो—हमारे लिए प्रेरणा का स्रोत है। उनके अनुभवों ने इस पुस्तक की उस मूल भावना को मजबूत किया है कि प्राकृतिक संसाधनों की वास्तविक रक्षा तभी संभव है जब स्थानीय समुदाय स्वयं संरक्षण के केंद्र में हों। हम विशेष रूप से उन ग्रामवासियों और जल-सैनिकों को नमन करते हैं जिन्होंने श्रम, समय और सामुदायिक भावना के माध्यम से जल एवं प्राकृतिक संसाधनों के पुनर्जीवन को संभव बनाया। अरावली के संदर्भ में भी यही जनशक्ति भविष्य की सबसे बड़ी ताकत बन सकती है।

हम**,** स्कूल ऑफ मैनेजमेंट साइंसेज, लखनऊ के मुख्य कार्यकारी अधिकारी**,** श्री शरद सिंह जी के प्रति विशेष आभार व्यक्त करते हैं। उनके प्रोत्साहन, सहयोग और पर्यावरणीय एवं सामाजिक सरोकारों के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण ने इस प्रकार के बौद्धिक एवं जनोपयोगी कार्यों के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान किया है। श्री शरद सिंह जी का नेतृत्व केवल संस्थागत दायित्वों तक सीमित नहीं है, बल्कि शिक्षा, सामाजिक उत्तरदायित्व, पर्यावरणीय चेतना और युवा पीढ़ी को राष्ट्र एवं प्रकृति के प्रति संवेदनशील बनाने की दिशा में भी प्रेरणादायी है। उनके सहयोग और शुभकामनाओं के लिए हम हृदय से आभारी हैं।

हम स्कूल ऑफ मैनेजमेंट साइंसेज, लखनऊ के समस्त संकाय सदस्य, शोधार्थियों, अधिकारियों, कर्मचारियों और सहयोगियों के प्रति भी अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। शिक्षकों और शोधकर्ताओं की वैज्ञानिक जिज्ञासा, विद्यार्थियों की ऊर्जा तथा संस्थान के सहयोगी वातावरण ने इस पुस्तक के विचारों को अधिक व्यापक पाठक-वर्ग तक पहुंचाने की प्रेरणा दी। विशेष रूप से हम उन सभी संकाय सदस्य और शोध-सहयोगियों के आभारी हैं जिन्होंने पर्यावरण, जल-संरक्षण, जलवायु परिवर्तन, सतत विकास और वैज्ञानिक अनुसंधान से जुड़े विषयों पर विचार-विमर्श के माध्यम से हमारी सोच को समृद्ध किया।

हम किसानों, पशुपालकों, ग्रामीण समुदायों, पर्यावरण कार्यकर्ताओं, जल-संरक्षकों, वन्यजीव प्रेमियों और स्थानीय नागरिकों के प्रति विशेष सम्मान व्यक्त करते हैं। अरावली उनके लिए केवल एक भौगोलिक संरचना नहीं है। वह किसी के लिए पानी का स्रोत है, किसी के लिए चारा और आजीविका का आधार, किसी के लिए जंगल और जैव-विविधता का घर तथा किसी के लिए धूल, गर्मी और मरुस्थलीकरण से बचाने वाली प्राकृतिक ढाल है। इसीलिए हमारा विश्वास है कि अरावली संरक्षण की कोई भी नीति स्थानीय समाज की भागीदारी के बिना पूर्ण नहीं हो सकती। पुस्तक में

भी यह स्पष्ट किया गया है कि केंद्र और राज्य सरकारें, वैज्ञानिक संस्थान, विश्वविद्यालय तथा न्यायपालिका अपनी-अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं, लेकिन अंतिम सफलता तभी मिलेगी जब स्थानीय समुदाय अरावली को अपनी जीवन-रेखा और सुरक्षा-कवच मानकर उसकी रक्षा में सक्रिय भागीदारी करें।

हम उन सभी वैज्ञानिकों, शोधकर्ताओं, शिक्षकों, विद्यार्थियों और पर्यावरण-चिंतकों के प्रति आभारी हैं जिन्होंने अरावली के भू-विज्ञान, जल-विज्ञान, जैव-विविधता, वन्यजीव, भूमि क्षरण, जलवायु परिवर्तन और पुनर्स्थापन (Restoration) जैसे विषयों पर निरंतर अध्ययन किया है। उनके शोध ने हमें यह समझने में सहायता की है कि अरावली की पहचान केवल 100 मीटर की ऊंचाई या 500 मीटर की दूरी जैसे मानकों से नहीं की जा सकती। वास्तविक वैज्ञानिक मूल्यांकन में भूविज्ञान, ढाल, मृदा, भूजल, जैवविविधता-, वन्यजीव गलियारे, भूमि उपयोग तथा पारिस्थितिकीय संपर्कता और स्थानीय आजीविका जैसे अनेक पक्षों को एक साथ देखना आवश्यक है।

हम उन सभी संस्थाओं और कार्यकर्ताओं के प्रति भी आभारी हैं जो क्षतिग्रस्त अरावली क्षेत्रों के पारिस्थितिकीय पुनर्स्थापन के लिए कार्य कर रहे हैं। हमारा विश्वास है कि संरक्षण का अर्थ केवल भविष्य में नुकसान रोकना नहीं, बल्कि पहले से क्षतिग्रस्त भू-भागों को पुनर्जीवित करना भी है। पुरानी खदानों का वैज्ञानिक पुनर्वास, प्राकृतिक जलनिकास- की बहाली, वर्षाजल संरक्षण, भूजल पुनर्भरण, स्थानीय प्राकृतिक वनस्पति की पुनर्स्थापना, वन्यजीव गलियारे का पुनर्संयोजन और स्थानीय समुदायों के लिए हरित आजीविका के अवसर—ये सभी अरावली के भविष्य की महत्वपूर्ण कड़ियां हैं।

भविष्य में सफलता का मूल्यांकन केवल इस आधार पर नहीं होना चाहिए कि कितने पेड़ लगाए गए, बल्कि इस आधार पर होना चाहिए कि कितना प्राकृतिक आवास बचाया गया, कितनी खराब भूमि को फिर से उपयोगी बनाया गया, भूजल रिचार्ज कितना बेहतर हुआ, कितने वन्यजीव मार्ग सुरक्षित हुए और कितने स्थानीय परिवारों की आजीविका मजबूत हुई।

अंततः हम अपने सभी परिवारजनों, मित्रों, शुभचिंतकों, सहकर्मियों, प्रकाशन-सहयोगियों और पाठकों के प्रति भी आभार व्यक्त करते हैं, जिनके प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सहयोग ने इस पुस्तक को आकार देने में योगदान दिया।

यह पुस्तक किसी एक व्यक्ति या संस्था की उपलब्धि नहीं है। यह उन सभी लोगों की सामूहिक चेतना का दस्तावेज है जो मानते हैं कि प्रकृति का संरक्षण मानव सभ्यता

के भविष्य का संरक्षण है। हम दोनों लेखकों की ओर से तरुण भारत संघ से जुड़े सभी साथियों, जल-सैनिकों, ग्रामवासियों, पर्यावरण-प्रेमियों, स्कूल ऑफ मैनेजमेंट साइंसेज, लखनऊ के मुख्य कार्यकारी अधिकारी, श्री शरद सिंह जी, समस्त संकाय सदस्य, अधिकारियों, कर्मचारियों, शोधार्थियों एवं विद्यार्थियों तथा इस पुस्तक की यात्रा में किसी भी रूप में सहयोग देने वाले प्रत्येक व्यक्ति को हृदय से धन्यवाद।

हमारी यह सामूहिक आस्था है—

"अरावली बचेगी तो जल बचेगा,
जल बचेगा तो जीवन बचेगा,
जीवन बचेगा तो पर्यावरण बचेगा,
और पर्यावरण बचेगा तो आने वाली पीढ़ियों का भविष्य सुरक्षित रहेगा।"

इसी विश्वास और संकल्प के साथ यह पुस्तक उन सभी समर्पित लोगों को प्रस्तुत है जो जल, जंगल, जमीन और जीवन की रक्षा के लिए निरंतर कार्यरत हैं।

— लेखक

डॉ. राजेन्द्र सिंह
जलपुरुष
तरुण भारत संघ, अलवर, राजस्थान

प्रो. (डॉ.) भरत राज सिंह
पर्यावरणविद, महानिदेशक (तक.)
स्कूल ऑफ मैनेजमेंट साइंसेज़, लखनऊ

अनुक्रमणिका

अध्याय		भूमिका / विवरण	पृष्ठ सं०
		समर्पण	v
		प्रस्तावना	vii
		आभार	xxiii
		अनुक्रमणिका	xvii
अध्याय-1		**20 नवम्बर 2025 का सुप्रीम कोर्ट का आदेश**	**1-8**
	चित्र -1.1	अरावली –प्राचीन पर्वत श्रंखला	1
	चित्र -1.2	अरावली पहाड़ियों पर 20 नवम्बर 2025 के निर्णय का भविष्य में प्रभाव	3
	चित्र -1.3	सुप्रीम कोर्ट का 20 नवम्बर 2025 का आदेश-ऐतिहासिक या खनन ?	4
अध्याय-2		**25 दिसम्बर 2025 का निर्णायक मोड़**	**9-18**
	चित्र-2.1	अरावली के भविष्य पर 25 दिसम्बर 2025 को सुप्रीम कोर्ट का निर्णय	10
अध्याय-3		**अरावली की असली पहचान क्या है?**	**19-30**
	चित्र-3.1	अरावली की असली पहचान –कोर्ट, विशेषज्ञ-समिति व वैज्ञानिक सिद्धांत	21
अध्याय-4		**जनता की नजर में अरावली**	**31-42**
	चित्र-4.1	अरावली –पहाड, जंगल, जीवन, पर्यावरण और आजीविका की सुरक्षा-कवच	32
अध्याय-5		**अरावली का क्षरण और जलवायु संकट**	**43-54**
	चित्र-5.1	भू-जल पुनर्भरण द्वारा नदियों का पुनर्जीवन	46
अध्याय-6		**विकास बनाम पारिस्थितिकी**	**55-66**
	चित्र-6.1	विकास बनाम पारिस्थिकी	57
अध्याय-7		**‘100 मीटर’ की कसौटी**	**67-78**
	चित्र-7.1	100 मीटर के उचाई का जजमेंट का आधार	68

	चित्र-7.2	100 मीटर की कसौटी –वैज्ञानिक आधार या विवादास्मक पैमाना	74
अध्याय-8		**अरावली को कैसे बचाया जाए? — कानून, विज्ञान, जनभागीदारी**	**79-92**
	चित्र-8.1	अरावली को कैसे बचाएं –कानून, विज्ञानं, जनभागीदारी व संरक्षण	82
अध्याय 9		**अरावली का भविष्य — संरक्षण से पुनर्जीवन**	**93-104**
	चित्र-9.1	अरावली का भविष्य –एक ठोस कार्य योजना	94
अध्याय 10		**निष्कर्ष: अरावली बचेगी तो भविष्य बचेगा**	**105-114**
परिशिष्ट		**सन्लग्नक**	**115-122**
	I.	संदर्भ / पुस्तकें	115-118
	II.	शब्द-कोष	119-122

1.
20 नवम्बर 2025 का सुप्रीम कोर्ट का आदेश —अरावली की परिभाषा बदली तो क्या बदलेगा?

अरावली को हम सामान्य रूप से एक पर्वत श्रृंखला के रूप में जानते हैं, लेकिन वास्तव में अरावली केवल पहाड़ों की एक लंबी कतार नहीं है। यह उत्तर-पश्चिम भारत की पर्यावरणीय व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसकी पहाड़ियां, ढलान, जंगल, चट्टानी क्षेत्र, जलग्रहण क्षेत्र और इनके बीच के प्राकृतिक भू-भाग मिलकर एक ऐसा पारिस्थितिक तंत्र बनाते हैं, जिसका प्रभाव पानी, मिट्टी, हवा, वन्यजीव और मानव जीवन तक पहुंचता है। इसलिए अरावली की कानूनी परिभाषा का प्रश्न केवल यह तय करने का प्रश्न नहीं है कि नक्शे पर किस स्थान को "पहाड़ी" कहा जाएगा। यह इस बात से भी जुड़ा है कि किस भूमि को विशेष पर्यावरणीय संरक्षण मिलेगा, कहां खनन पर नियंत्रण रहेगा और भविष्य में किस क्षेत्र में भूमि उपयोग बदला जा सकेगा।

चित्र-1.1: अरावली –प्राचीन पर्वत श्रृंखला

इसी पृष्ठभूमि में 20 नवम्बर 2025 का सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय अत्यंत महत्वपूर्ण बन गया। इस मामले में न्यायालय ने अरावली हिल्स और अरावली रेंज की एक समान, वैज्ञानिक और प्रशासनिक रूप से लागू की जा सकने वाली परिभाषा को स्वीकार किया। यह निर्णय In Re: Issues Relating to Definition of Aravali Hills and Ranges, 2025 INSC 1338 के रूप में आया। न्यायालय के सामने मुख्य समस्या यह थी कि अलग-अलग सरकारी विभागों और राज्यों में अरावली की पहचान और सीमांकन के लिए अलग-अलग मानदंड और रिकॉर्ड इस्तेमाल हो रहे थे।

इस स्थिति में खनन और पर्यावरण संरक्षण से जुड़े नियमों को समान रूप से लागू करना कठिन हो रहा था। सुप्रीम कोर्ट ने इसी समस्या के समाधान के लिए एक समान परिभाषा की आवश्यकता को स्वीकार किया।

20 नवम्बर के फैसले में जिस परिभाषा को स्वीकार किया गया, उसका सबसे महत्वपूर्ण आधार था **100 मीटर का स्थानीय ऊंचाई मानदंड**। सरल भाषा में इसका अर्थ यह था कि अरावली जिले में यदि कोई भू-आकृति अपने आसपास की स्थानीय जमीन की तुलना में कम-से-कम 100 मीटर ऊंची है, तो उसे अरावली हिल के रूप में पहचानने का आधार बनाया जाएगा। यहां 100 मीटर का मतलब समुद्र तल से ऊंचाई नहीं है, बल्कि उस भू-भाग की आसपास की स्थानीय जमीन से ऊंचाई है। इस अंतर को समझना बहुत जरूरी है, क्योंकि समुद्र तल से ऊंचाई और स्थानीय ऊंचाई दो अलग-अलग चीजें हैं।

इस परिभाषा में केवल पहाड़ी की चोटी को ही नहीं देखा गया। पहाड़ी के चारों ओर की सबसे निचली सीमा-समोच्च रेखा के भीतर आने वाली भूमि, उसकी सहायक ढालों और उससे जुड़ी अन्य भू-आकृतियों को भी परिभाषा में शामिल किया गया था। भारत सरकार के आधिकारिक स्पष्टीकरण के अनुसार, 100 मीटर या उससे अधिक स्थानीय उभार वाली पहाड़ी की पूरी संबंधित भू-आकृति और उसकी ढालों को भी संरक्षण व्यवस्था में ध्यान में रखा गया था। इसके अलावा, दो ऐसी पहाड़ियों के बीच 500 मीटर तक की दूरी में आने वाली भू-आकृतियों को **अरावली पर्वतमाला** की पहचान में शामिल करने का प्रावधान था।

इसे एक साधारण उदाहरण से समझा जा सकता है। मान लीजिए किसी इलाके में दो पहाड़ियां हैं और दोनों की ऊंचाई अपने स्थानीय आधार से 100 मीटर या उससे अधिक है। यदि वे एक-दूसरे के 500 मीटर के भीतर हैं, तो उनके बीच का संबंधित क्षेत्र भी अरावली रेंज का हिस्सा माना जा सकता है। इसका उद्देश्य केवल ऊंची पहाड़ियों को अलग-अलग बचाना नहीं था, बल्कि उनके बीच की प्राकृतिक

निरंतरता को भी ध्यान में रखना था। इसलिए 20 नवम्बर के फैसले को केवल “100 मीटर से ऊंची पहाड़ियों की सुरक्षा” के रूप में समझना पूरी तस्वीर नहीं होगी।

चित्र-1.2: अरावली पहाड़ियों पर 20 नवम्बर 2025 के निर्णय का भविष्य में प्रभाव

फिर भी इस परिभाषा ने एक बहुत बड़ा सवाल खड़ा किया। वह सवाल था—क्या अरावली जैसी बहुत पुरानी और लंबे समय से प्राकृतिक क्षरण का सामना कर रही पर्वत श्रृंखला की पहचान केवल ऊंचाई के आधार पर की जा सकती है? अरावली की कई पहाड़ियां बहुत ऊंची नहीं हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि वे पर्यावरण की दृष्टि से महत्वहीन हैं। कोई छोटी पहाड़ी किसी बड़े जलग्रहण क्षेत्र का हिस्सा हो सकती है, भूजल के पुनर्भरण में मदद कर सकती है, वनस्पतियों और वन्यजीवों को आश्रय दे सकती है या बड़ी पहाड़ियों के बीच प्राकृतिक संपर्क बनाए रख सकती है। इसलिए किसी पहाड़ी की ऊंचाई कम होने से उसका पारिस्थितिक महत्व अपने-आप समाप्त नहीं हो जाता।

यही वह बिंदु था जिसने 20 नवम्बर के फैसले को केवल एक तकनीकी या प्रशासनिक फैसला न रहने देकर एक बड़ी पर्यावरणीय बहस का विषय बना दिया। यहां एक और महत्वपूर्ण बात समझना आवश्यक है। 20 नवम्बर 2025 के फैसले का अर्थ यह नहीं था कि 100 मीटर से कम ऊंचाई वाली हर भूमि पर उसी दिन से खनन शुरू किया जा सकता था। न्यायालय ने केवल परिभाषा स्वीकार नहीं की थी, बल्कि खनन को नियंत्रित करने के लिए कई सुरक्षा उपाय भी रखे थे। फैसले में अरावली क्षेत्र के लिए सतत खनन के लिए प्रबंधन योजना (MPSM) तैयार करने की

बात कही गई थी। जब तक यह योजना तैयार नहीं होती, नए खनन पट्टों को लेकर प्रतिबंध रखा गया था। योजना बनने के बाद भी खनन केवल उन क्षेत्रों में किया जाना था जिन्हें वैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर टिकाऊ खनन के लिए उपयुक्त माना जाए।

चित्र-1.3: सुप्रीम कोर्ट का 20 नवम्बर 2025 का आदेश-ऐतिहासिक या खनन ?

इसलिए इस फैसले को “सुप्रीम कोर्ट ने अरावली में खनन खोल दिया” कहना सही नहीं होगा। फैसले में अवैध खनन को रोकने, संवेदनशील क्षेत्रों को बचाने और पूरे अरावली क्षेत्र के लिए वैज्ञानिक खनन प्रबंधन की व्यवस्था पर भी जोर दिया गया था। लेकिन दूसरी ओर, नई परिभाषा को लेकर चिंता इसलिए पैदा हुई क्योंकि यदि किसी क्षेत्र को कानूनी रूप से अरावली के दायरे से बाहर माना जाता है, तो उस क्षेत्र को अरावली के नाम से मिलने वाला विशेष संरक्षण कमजोर हो सकता है। यही इस विवाद का मूल प्रश्न था।

अरावली की परिभाषा बदलने का असर सबसे पहले **भूमि की कानूनी पहचान** पर पड़ सकता है। किसी क्षेत्र की पहचान केवल भूगोल का विषय नहीं होती। जब कोई क्षेत्र किसी विशेष पर्यावरणीय श्रेणी में आता है, तो वहां भूमि उपयोग, खनन, निर्माण और अन्य आर्थिक गतिविधियों पर अलग-अलग नियम लागू हो सकते हैं। इसलिए यदि अरावली की सीमा छोटी या बड़ी होती है, तो उसके साथ संरक्षण का क्षेत्र भी बदल सकता है।

इसका सीधा संबंध **खनन** से है। अरावली क्षेत्र में खनन लंबे समय से पर्यावरणीय विवादों का विषय रहा है। पहाड़ों को काटने से प्राकृतिक भू-आकृति बदलती है, वनस्पति नष्ट हो सकती है, जल-प्रवाह प्रभावित हो सकता है और मिट्टी तथा भूजल पर दबाव पड़ सकता है। यदि कोई क्षेत्र अरावली के संरक्षण क्षेत्र से बाहर निकलता है, तो भविष्य में वहां खनन या अन्य गतिविधियों के लिए कानूनी रास्ते अलग हो सकते हैं। इसी कारण अरावली की परिभाषा केवल शब्दों का बदलाव नहीं है; यह जमीन के भविष्य से जुड़ा प्रश्न है।

इसका दूसरा बड़ा संबंध **भूजल** से है। अरावली की पहाड़ियों और ढलानों पर होने वाली वर्षा का पानी कई जगहों पर जमीन में रिसता है और भूजल पुनर्भरण में योगदान देता है। जब प्राकृतिक भू-भाग को काटकर समतल किया जाता है या उसका उपयोग बड़े पैमाने पर निर्माण के लिए किया जाता है, तो पानी के प्राकृतिक प्रवाह में बदलाव आ सकता है। इसलिए किसी पहाड़ी को बचाना केवल पहाड़ को बचाना नहीं है; कई क्षेत्रों में यह पानी के भविष्य को बचाने से भी जुड़ा है।

तीसरा संबंध **जैव-विविधता** से है। अरावली के जंगल और पहाड़ी क्षेत्र अनेक प्रकार के पौधों, पक्षियों और वन्यजीवों के लिए आवास उपलब्ध कराते हैं। छोटी पहाड़ियां भी इन आवासों के बीच संपर्क बनाए रखने में महत्वपूर्ण हो सकती हैं। यदि प्राकृतिक क्षेत्र टुकड़ों में बंट जाते हैं, तो वन्यजीवों का आवागमन प्रभावित हो सकता है। इसलिए अरावली की वैज्ञानिक परिभाषा में केवल ऊंचाई ही नहीं, बल्कि पारिस्थितिक निरंतरता पर विचार करना भी आवश्यक है।

चौथा संबंध **मरुस्थलीकरण** से है। अरावली उत्तर-पश्चिम भारत के भू-दृश्य का महत्वपूर्ण हिस्सा है और इसे राजस्थान तथा आसपास के क्षेत्रों में मरुस्थलीकरण के प्रभावों से जुड़ी पर्यावरणीय चर्चा में महत्वपूर्ण माना जाता है। पहाड़ी क्षेत्र और उनसे जुड़े वनस्पति क्षेत्र हवा, धूल और स्थानीय जलवायु की परिस्थितियों को प्रभावित करते हैं। इसलिए अरावली के कमजोर होने का प्रभाव केवल पहाड़ी के आसपास तक सीमित नहीं रह सकता।

यही कारण है कि 20 नवम्बर 2025 के निर्णय के बाद यह सवाल तेजी से उठा कि क्या 100 मीटर की सीमा अरावली की वास्तविक पारिस्थितिक सीमा को पूरी तरह पकड़ सकती है। कुछ विश्लेषकों और पर्यावरण विशेषज्ञों ने आशंका जताई कि ऊंचाई को मुख्य मानदंड बनाने से कम ऊंचाई वाली अनेक प्राकृतिक संरचनाएं विशेष अरावली संरक्षण से बाहर हो सकती हैं।

दूसरी ओर, सरकार की ओर से यह स्पष्ट किया गया कि 100 मीटर की सीमा को अलग करके नहीं देखा जाना चाहिए। सरकार के अनुसार, 100 मीटर या उससे अधिक ऊंचाई वाली पहाड़ियों की ढलान स्थिरीकरण (supporting slopes) और संबंधित भू-आकृतियां भी परिभाषा में शामिल थीं। इसी तरह दो ऐसी पहाड़ियों के बीच 500 मीटर के क्षेत्र को भी रेंज की पहचान में शामिल करने का प्रावधान था। सरकार ने यह भी स्पष्ट किया कि 100 मीटर से कम किसी भू-आकृति का अरावली की विशेष परिभाषा में न आना अपने-आप उसे खनन के लिए खुला क्षेत्र नहीं बना देता। अन्य पर्यावरणीय कानून, संरक्षित क्षेत्र, पर्यावरण-संवेदनशील क्षेत्र (eco-संवेदनशील क्षेत्र) और दूसरे नियामकीय प्रतिबंध भी लागू रह सकते हैं।

इसलिए इस मामले को समझते समय दोनों पक्षों को साथ देखना आवश्यक है। एक तरफ प्रशासन को स्पष्ट, वैज्ञानिक और लागू करने योग्य परिभाषा चाहिए। यदि अरावली की सीमा ही स्पष्ट नहीं होगी तो सरकारी विभागों के लिए नियम लागू करना कठिन होगा। दूसरी तरफ ऐसी परिभाषा भी नहीं होनी चाहिए जो किसी प्राकृतिक क्षेत्र की वास्तविक पारिस्थितिक भूमिका को केवल इसलिए नजरअंदाज कर दे क्योंकि उसकी ऊंचाई किसी निश्चित संख्या से कम है।

यहीं से **कानून और विज्ञान के बीच संतुलन** का प्रश्न पैदा होता है।
कानून को एक स्पष्ट सीमा चाहिए, लेकिन प्रकृति हमेशा सीधी रेखाओं और निश्चित संख्याओं में नहीं चलती। पहाड़ियां, जंगल, जलग्रहण क्षेत्र और वन्यजीवों के आवास एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। इसलिए अरावली की परिभाषा बनाते समय भू-विज्ञान के साथ-साथ जल-विज्ञान, वनस्पति, जैव-विविधता और स्थानीय परिस्थितियों को भी ध्यान में रखना जरूरी है।

इस पूरे विवाद में 29 दिसम्बर 2025 का सुप्रीम कोर्ट का अगला आदेश भी उतना ही महत्वपूर्ण है। 20 नवम्बर के फैसले के कुछ ही सप्ताह बाद सर्वोच्च न्यायालय ने उस फैसले से जुड़ी दिशाओं को फिलहाल प्रभावहीन/स्थगित (abeyance), कर दिया और मामले की दोबारा विशेषज्ञ समीक्षा की आवश्यकता पर जोर दिया। न्यायालय ने माना कि इस संवेदनशील पर्यावरणीय मामले में स्वतंत्र, निष्पक्ष और विशेषज्ञ राय प्राप्त करना आवश्यक है।

इसका अर्थ यह है कि 20 नवम्बर 2025 की 100 मीटर और 500 मीटर वाली परिभाषा को वर्तमान में अरावली की अंतिम और लागू कानूनी परिभाषा मानना सही नहीं है। 29 दिसम्बर के आदेश के बाद उस व्यवस्था पर पुनर्विचार का रास्ता खुल गया। यही कारण है कि आज अरावली की परिभाषा पर चर्चा करते समय 20 नवम्बर के फैसले के साथ 29 दिसम्बर के आदेश को भी समझना आवश्यक है।

इस पूरे मामले से एक बहुत महत्वपूर्ण कानूनी सिद्धांत सामने आता है—**प्राकृतिक संसाधनों की परिभाषा स्वयं संरक्षण का साधन बन सकती है।** यदि किसी भूमि को अरावली माना जाता है, तो उसके संरक्षण के लिए विशेष कानूनी व्यवस्था लागू हो सकती है। यदि उसे अरावली नहीं माना जाता, तो उस भूमि पर अलग नियम लागू हो सकते हैं। इसलिए किसी पर्वत की कानूनी परिभाषा केवल शब्दावली का प्रश्न नहीं है। वह जमीन, खनन, निर्माण, पानी और पर्यावरण के भविष्य को प्रभावित कर सकती है।

आम नागरिक के लिए इस विषय को बहुत सरल तरीके से समझा जा सकता है। मान लीजिए किसी गांव के पास एक छोटी पहाड़ी है। वह 100 मीटर की सीमा पूरी नहीं करती, लेकिन उसके नीचे भूजल रिचार्ज होता है, बरसात का पानी उसी दिशा में जाता है, उसके आसपास वनस्पति है और वन्यजीव वहां से गुजरते हैं। यदि केवल ऊंचाई के आधार पर उसे महत्वहीन मान लिया जाए, तो कागज पर एक छोटा-सा बदलाव भविष्य में जमीन के उपयोग को बदल सकता है। लेकिन यदि वैज्ञानिक अध्ययन यह साबित करता है कि वह पहाड़ी पूरे जलग्रहण क्षेत्र या वन्यजीव तंत्र के लिए महत्वपूर्ण है, तो उसकी सुरक्षा का आधार केवल ऊंचाई नहीं बल्कि उसका पारिस्थितिक महत्व होना चाहिए। इसलिए अरावली की भविष्य की परिभाषा बनाते समय केवल यह पूछना पर्याप्त नहीं होगा कि **"पहाड़ी कितनी ऊंची है?**" यह भी पूछना होगा कि "**वह पहाड़ी प्रकृति और समाज के लिए क्या काम करती है**?" यही दृष्टिकोण अरावली को केवल एक पर्वत श्रृंखला के बजाय **जीवन-तंत्र** के रूप में देखने की ओर ले जाता है।

20 नवम्बर 2025 का फैसला इसलिए ऐतिहासिक था क्योंकि उसने लंबे समय से चली आ रही परिभाषा की समस्या को एक समान वैज्ञानिक मानदंड से हल करने का प्रयास किया। लेकिन इसके साथ जो बहस पैदा हुई, उसने यह भी दिखाया कि किसी प्राकृतिक तंत्र को केवल एक या दो तकनीकी मानदंडों में बांधना कितना कठिन हो सकता है। 100 मीटर का मानदंड प्रशासन के लिए स्पष्ट हो सकता है, लेकिन पर्यावरण के लिए यह सवाल खुला रहता है कि क्या इससे अरावली के सभी महत्वपूर्ण प्राकृतिक हिस्सों की पर्याप्त पहचान हो जाती है।

इसलिए अरावली का भविष्य एक संतुलित दृष्टिकोण पर निर्भर करेगा। ऐसा दृष्टिकोण जिसमें वैज्ञानिक मानचित्रण हो, भूगर्भीय अध्ययन हो, जलग्रहण क्षेत्रों की पहचान हो, जैव-विविधता का मूल्यांकन हो, वन क्षेत्र और वन्यजीव गलियारे का अध्ययन हो तथा स्थानीय लोगों के अनुभवों को भी महत्व दिया जाए। साथ ही जहां खनन की अनुमति दी जाए, वहां वह वास्तव में वैज्ञानिक और सतत आधार पर हो तथा संवेदनशील क्षेत्रों में संरक्षण को प्राथमिकता दी जाए।

अंततः 20 नवम्बर 2025 के आदेश की सबसे बड़ी सीख यही है कि **अरावली की परिभाषा केवल नक्शे की रेखा नहीं है। यह भविष्य की पर्यावरणीय नीति की सीमा तय कर सकती है।** एक छोटी परिभाषा में बड़ा पर्यावरणीय अर्थ छिपा हो सकता है। यदि परिभाषा बहुत संकीर्ण होगी, तो महत्वपूर्ण प्राकृतिक क्षेत्र संरक्षण से बाहर हो सकते हैं; यदि वह वैज्ञानिक आधार पर बहुत व्यापक और स्पष्ट होगी, तो संरक्षण और विकास के बीच बेहतर संतुलन बनाया जा सकता है।

इसलिए अरावली को बचाने की बहस में हमें केवल यह नहीं देखना चाहिए कि कौन-सी पहाड़ी 100 मीटर ऊंची है और कौन-सी नहीं। हमें यह देखना चाहिए कि कौन-सी पहाड़ी पानी बचाती है, कौन-सी मिट्टी बचाती है, कौन-सी जैव-विविधता को सहारा देती है, कौन-सी वन्यजीवों के लिए रास्ता बनाती है और कौन-सी आने वाली पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक सुरक्षा-कवच है।
अरावली की असली पहचान उसकी ऊंचाई से नहीं, उसके पर्यावरणीय योगदान से भी होती है।

इसीलिए इस अध्याय का मूल प्रश्न केवल यह नहीं है कि **"अरावली की परिभाषा बदली तो क्या बदलेगा?"** बल्कि उससे भी बड़ा प्रश्न है—**"अरावली की ऐसी परिभाषा क्या होनी चाहिए, जो कानून के लिए स्पष्ट और प्रकृति के लिए सुरक्षित हो?"**

यही प्रश्न आगे की न्यायिक प्रक्रिया का केंद्र है और यही अरावली के भविष्य का सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न भी है।

2.
25 दिसम्बर 2025 का निर्णायक मोड़ — अरावली के भविष्य पर सुप्रीम कोर्ट का क्या संकेत था?

अरावली के इतिहास में वर्ष **2025** का अंतिम महीना एक ऐसे मोड़ के रूप में सामने आया, जिसने देश को यह सोचने पर मजबूर कर दिया कि आखिर अरावली को बचाने का सही रास्ता क्या है। **20 नवम्बर 2025** को सर्वोच्च न्यायालय ने अरावली पहाड़ियों और अरावली पर्वतमाला की एक नई समान परिभाषा को स्वीकार किया था। इस परिभाषा में मुख्य आधार **100 मीटर** का **स्थानीय ऊँचाई अंतर** और दो या अधिक ऐसी पहाड़ियों के बीच **500 मीटर** का **क्षेत्र** था। फैसले में यह भी कहा गया था कि पूरे अरावली क्षेत्र के लिए **सतत खनन योजना** तैयार की जाए और संवेदनशील क्षेत्रों में खनन पर रोक रखी जाए। लेकिन इस फैसले के बाद जैसे-जैसे इसकी व्याख्या और संभावित प्रभाव सामने आए, वैसे-वैसे चिंता बढ़ती गई कि क्या नई परिभाषा से अरावली के कुछ ऐसे हिस्से विशेष संरक्षण से बाहर हो सकते हैं, जो पर्यावरण की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। यही कारण है कि **25 दिसम्बर 2025** के आसपास अरावली विवाद देश की बड़ी पर्यावरणीय बहस बन चुका था।

यहां एक महत्वपूर्ण तथ्य फिर से स्पष्ट करना जरूरी है। 25 दिसम्बर 2025 को सुप्रीम कोर्ट का अरावली पर कोई नया आदेश नहीं आया था। उस दिन तक अदालत का प्रमुख संबंधित फैसला 20 नवम्बर 2025 का था और उसके बाद न्यायिक प्रक्रिया आगे बढ़ रही थी। 24 दिसम्बर 2025 को केंद्र सरकार ने अरावली के पूरे क्षेत्र की सुरक्षा के लिए नए खनन पट्टों पर रोक लगाने तथा वैज्ञानिक आधार पर **सतत प्रबंधन योजना** तैयार करने संबंधी निर्देश जारी किए। इसके अगले चरण में 29 दिसम्बर को सुप्रीम कोर्ट ने स्वयं 20 नवम्बर के फैसले को फिलहाल रोकते हुए मामले की स्वतंत्र विशेषज्ञ समीक्षा की आवश्यकता बताई। इसलिए 25 दिसम्बर 2025 को "निर्णायक मोड़" कहना उस समय चल रही घटनाओं और उसके बाद आने वाले 29 दिसम्बर 2025 के **आदेश** के संदर्भ में समझना चाहिए, न कि 25 दिसम्बर को पारित किसी अलग सुप्रीम कोर्ट आदेश के रूप में।

20 नवम्बर के फैसले को समझे बिना दिसम्बर के घटनाक्रम को समझना संभव नहीं है। उस फैसले में सुप्रीम कोर्ट ने अरावली की परिभाषा को एक समान बनाने के प्रयास को स्वीकार किया था। अदालत के सामने यह समस्या थी कि अरावली की पहचान को लेकर अलग-अलग सरकारी रिकॉर्ड और मानदंड इस्तेमाल हो रहे थे। इस कारण यह तय करना कठिन हो रहा था कि किस क्षेत्र में अरावली संबंधी संरक्षण और खनन नियंत्रण लागू होगा। समिति ने एक ऐसी कार्यात्मक परिभाषा सुझाई, जिसमें **100 मीटर या उससे अधिक स्थानीय ऊँचाई अंतर** वाली भू-आकृति को अरावली हिल के रूप में पहचानने और 500 मीटर के आसपास के संबंधित भू-भाग को अरावली रेंज की पहचान में शामिल करने का प्रस्ताव था। सुप्रीम कोर्ट ने इस परिभाषा को स्वीकार किया था। साथ ही, अदालत ने मुख्य एवं पूर्णतः संरक्षित क्षेत्रों में खनन पर रोक, **सतत खनन** के नियम तथा **अवैध खनन** पर रोक लगाने के उपायों को भी स्वीकार किया।

चित्र 2.1: अरस्वली के भविष्य पर 25 दिसम्बर 2025 को सुप्रीम कोर्ट का निर्णय

यहीं से एक बड़ा सवाल पैदा हुआ। यदि कोई पहाड़ी 100 मीटर की सीमा पूरी नहीं करती तो क्या उसका पर्यावरणीय महत्व समाप्त हो जाता है? अरावली कोई युवा और ऊंची पर्वत श्रृंखला नहीं है। यह अत्यंत पुरानी भू-वैज्ञानिक संरचना है और लंबे समय में प्राकृतिक क्षरण के कारण इसके अनेक हिस्से अपेक्षाकृत कम ऊंचाई वाले हो चुके हैं। इसलिए पर्यावरण विशेषज्ञों की चिंता थी कि केवल ऊंचाई को आधार बनाने से कुछ छोटी पहाड़ियां, चट्टानी क्षेत्र, प्राकृतिक ढलान और जुड़े हुए भू-भाग

विशेष अरावली संरक्षण की परिधि से बाहर हो सकते हैं। 25 दिसम्बर 2025 तक यही प्रश्न सार्वजनिक बहस के केंद्र में था।

इस चिंता को समझने के लिए हमें अरावली के वास्तविक पर्यावरणीय महत्व को समझना होगा। अरावली केवल पहाड़ नहीं है। यह उत्तर-पश्चिम भारत के लिए एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक व्यवस्था है। यह भूजल पुनर्भरण, जैव-विविधता, मिट्टी संरक्षण और मरुस्थलीकरण के प्रभावों से जुड़ी हुई है। सुप्रीम कोर्ट ने बाद के 29 दिसम्बर के आदेश में अरावली को उत्तर-पश्चिम भारत के "हरित फेफड़ों" (green lungs) और क्षेत्र की पारिस्थितिक तथा सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था की महत्वपूर्ण रीढ़ के रूप में वर्णित किया। अदालत ने यह भी कहा कि अरावली शुष्क उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र और उपजाऊ उत्तरी मैदानों के बीच एक महत्वपूर्ण भौगोलिक अवरोध का काम करती है।

यही कारण है कि अरावली की परिभाषा केवल तकनीकी विषय नहीं बन सकती। यदि किसी क्षेत्र को अरावली माना जाता है, तो वहां विशेष पर्यावरणीय नियम लागू हो सकते हैं। यदि वही क्षेत्र परिभाषा से बाहर चला जाता है, तो उसके संरक्षण का कानूनी आधार बदल सकता है। इसलिए 100 मीटर की सीमा को लेकर उठी बहस वास्तव में इस बात की बहस थी कि पर्यावरणीय संरक्षण की सीमा कितनी होनी चाहिए।

25 दिसम्बर 2025 के आसपास एक और महत्वपूर्ण घटनाक्रम सामने आया। केंद्र सरकार ने 24 दिसम्बर 2025 को अरावली क्षेत्र में **नए खनन पट्टे जारी करने पर रोक** लगाने संबंधी निर्देश जारी किए। सरकार ने पूरे अरावली क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए वैज्ञानिक आधार पर **सतत खनन प्रबंधन योजना** तैयार करने की प्रक्रिया पर जोर दिया। इस योजना में स्थानीय भू-आकृति, मिट्टी, नदियों, घाटियों, ऊंचाई, पारिस्थितिकी और जैव-विविधता जैसे तत्वों को ध्यान में रखने की बात कही गई। सरकार ने यह भी कहा गया कि अतिरिक्त **पारिस्थितिक** रूप से संवेदनशील क्षेत्रों की पहचान की जाएगी तथा खनन की **वहन क्षमता** और **समग्र पर्यावरणीय प्रभाव** का अध्ययन किया जाएगा।

यह कदम इसलिए महत्वपूर्ण था क्योंकि इससे यह संकेत मिला कि अरावली के भविष्य को केवल खनन की अनुमति या रोक के सवाल से नहीं देखा जा रहा है। अब प्रश्न यह था कि यदि कहीं खनन हो भी, तो वह वैज्ञानिक सीमा के भीतर कैसे हो, किन क्षेत्रों में बिल्कुल न हो और खनन के बाद पर्यावरण की पुनर्स्थापना कैसे की जाए।

लेकिन पर्यावरणीय दृष्टि से असली चिंता यह थी कि **किस क्षेत्र को पहले अरावली माना जाए।** यदि किसी भू-भाग की पहचान ही संरक्षण क्षेत्र के रूप में नहीं होगी, तो उसके बाद **सतत खनन** (sustainable minning) की योजना बनाना भी अधूरा हो सकता है। इसीलिए अरावली की परिभाषा और खनन नीति दोनों एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए विषय हैं।

25 दिसम्बर 2025 के आसपास सार्वजनिक चर्चा में 100 मीटर की सीमा सबसे अधिक विवादित मुद्दा बन गई। कुछ रिपोर्टों और विशेषज्ञ टिप्पणियों में यह चिंता व्यक्त की गई कि यदि ऊंचाई की सीमा बहुत अधिक रखी जाती है तो अरावली की छोटी लेकिन महत्वपूर्ण भू-आकृतियां संरक्षण से बाहर जा सकती हैं। दूसरी ओर सरकार का पक्ष यह था कि 100 मीटर का मानदंड अकेले लागू नहीं होता। 100 मीटर या उससे अधिक ऊंची पहाड़ी को रोकने के झुकाव (supporting slopes) और उसके आसपास के संबंधित क्षेत्र भी परिभाषा का हिस्सा थे। दो ऐसी पहाड़ियों के बीच 500 मीटर तक का क्षेत्र भी अरावली रेंज की पहचान में शामिल किया जाना था। सरकार ने यह भी स्पष्ट किया कि किसी भूमि का 100 मीटर से कम होना अपने-आप उसे खनन के लिए उपलब्ध नहीं बनाता। अन्य पर्यावरणीय कानून और प्रतिबंध भी लागू रहते हैं।

इस अंतर को समझना बहुत जरूरी है। सार्वजनिक बहस में कभी-कभी यह दावा सामने आया कि नई परिभाषा का मतलब है कि अरावली का लगभग 90 प्रतिशत हिस्सा खत्म हो जाएगा और केवल 10 प्रतिशत ही बचेगा। लेकिन ऐसी बात को सीधे कानूनी निष्कर्ष के रूप में स्वीकार करना उचित नहीं है। परिभाषा में **सहायक ढलानों** तथा **500 मीटर** के जुड़े हुए क्षेत्रों को भी शामिल किया गया था और **100 मीटर से कम ऊँचाई वाले क्षेत्र** अपने-आप खनन क्षेत्र नहीं बन जाते थे। इसलिए वास्तविक प्रभाव का आकलन केवल पहाड़ियों की ऊँचाई देखकर नहीं किया जा सकता; इसके लिए आधिकारिक भौगोलिक सूचना प्रणाली (जीआईएस) मानचित्र, समोच्च रेखा संबंधी आँकड़े, भूमि उपयोग, वन क्षेत्र तथा लागू पर्यावरणीय कानूनों को समग्र रूप से देखना आवश्यक है।

फिर भी चिंता समाप्त नहीं हुई। सवाल यह था कि क्या कानूनी परिभाषा प्रकृति की वास्तविक सीमा को पर्याप्त रूप से पकड़ रही है। प्रकृति में कोई पहाड़ी अकेली नहीं होती। उसके आसपास की ढलान, नीचे का जलग्रहण क्षेत्र, जंगल, छोटी चट्टानी संरचनाएं और अन्य पहाड़ियों के साथ उनका संपर्क मिलकर एक पारिस्थितिक परिदृश्य का निर्माण करता है। यदि इस पूरे परिदृश्य को छोटे-छोटे कानूनी हिस्सों में बाँट दिया जाए, तो पर्यावरणीय प्रभाव का आकलन गलत और अधूरा हो सकता है।

यही कारण है कि सुप्रीम कोर्ट के बाद के रुख को समझना बहुत महत्वपूर्ण है। 29 दिसम्बर 2025 को अदालत ने कहा कि 20 नवम्बर के फैसले के बाद कई आवेदन और याचिकाएँ सामने आईं और अदालत के सामने यह चिंता रखी गई कि नई परिभाषा के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न और अस्पष्टताएं हैं। इसके बाद अदालत ने स्वतंत्र विशेषज्ञ राय और सभी संबंधित पक्षों से परामर्श की आवश्यकता पर जोर दिया। अदालत ने 20 नवम्बर 2025 के फैसले और समिति की सिफारिशों को फिलहाल स्थगन (**abeyance)** में रखने का आदेश दिया, ताकि वर्तमान व्यवस्था के आधार पर कोई अपरिवर्तनीय प्रशासनिक या पारिस्थितिक कदम न उठाया जाए।

यह न्यायिक दृष्टि बहुत महत्वपूर्ण है। पर्यावरण के मामलों में कई बार नुकसान ऐसा होता है जिसे बाद में पूरी तरह वापस नहीं किया जा सकता। यदि किसी पहाड़ी को काट दिया गया, जंगल हटा दिया गया या प्राकृतिक जल-प्रवाह नष्ट हो गया, तो बाद में केवल कानूनी आदेश जारी करके उसे पहले जैसा बनाना बहुत कठिन हो सकता है। इसलिए अदालत ने सावधानी बरतने का रास्ता चुना।

29 दिसम्बर के आदेश में अदालत ने यह भी निर्देश दिया कि आगे के आदेश तक FSI की 25 अगस्त 2010 की रिपोर्ट में परिभाषित अरावली हिल्स और रेंज में नए खनन पट्टे या पुराने पट्टों के नवीनीकरण के लिए अदालत की पूर्व अनुमति आवश्यक होगी। यह आदेश अरावली संरक्षण के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण था क्योंकि इससे खनन गतिविधियों को सीधे न्यायिक निगरानी के दायरे में रखा गया।

इसलिए 25 दिसम्बर 2025 के आसपास का "**संकेत**" वास्तव में तीन स्तरों पर समझा जा सकता है। पहला संकेत यह था कि अरावली को लेकर केवल एक तकनीकी परिभाषा पर्याप्त नहीं हो सकती। दूसरा संकेत यह था कि खनन को वैज्ञानिक और सतत विकास की रूपरेखा (sustainable framework) के भीतर रखना होगा। तीसरा और सबसे महत्वपूर्ण संकेत यह था कि यदि किसी परिभाषा से पर्यावरणीय नुकसान की आशंका पैदा होती है, तो अदालत अंतिम रूप से उस पर पुनर्विचार कर सकती है।

इस पूरे घटनाक्रम में सुप्रीम कोर्ट की पर्यावरणीय सोच का एक महत्वपूर्ण पहलू दिखाई देता है। अदालत ने विकास को पूरी तरह नकारने की बात नहीं की। 20 नवम्बर 2025 के फैसले में भी सतत खनन (sustainable minning) की व्यवस्था को स्वीकार किया गया था। इसका अर्थ है कि न्यायालय का दृष्टिकोण यह नहीं था कि अरावली क्षेत्र में हर आर्थिक गतिविधि हमेशा के लिए बंद हो जाए। बल्कि सवाल यह था कि आर्थिक गतिविधि पर्यावरण की वहन क्षमता (carrying capacity) के भीतर हो और ऐसे क्षेत्र, जिनका पारिस्थितिकीय महत्त्व (पारिस्थितिक value) अत्यधिक है, उन्हें सुरक्षित रखा जाए।

यह दृष्टिकोण आज के पर्यावरणीय न्याय का महत्वपूर्ण हिस्सा है। विकास और पर्यावरण को हमेशा एक-दूसरे के विरोधी के रूप में देखना जरूरी नहीं है। लेकिन विकास का अर्थ यह भी नहीं हो सकता कि प्राकृतिक संसाधनों का ऐसा दोहन किया जाए जिससे भविष्य की पीढ़ियों के लिए पानी, जंगल और प्राकृतिक सुरक्षा समाप्त हो जाए।

अरावली के संदर्भ में यह बात और महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि इसके प्रभाव चार राज्यों तक फैले हुए हैं। दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान और गुजरात से जुड़े इस पूरे क्षेत्र को एक-दूसरे से अलग करके देखने के बजाय एक सतत भूवैज्ञानिक एवं पारिस्थितिकीय भूदृश्य (continuous geological and ecological landscape) के रूप में देखना अधिक उपयोगी है। सुप्रीम कोर्ट ने 20 नवम्बर 2025 के फैसले में भी पूरे अरावली को गुजरात से दिल्ली तक फैली निरंतर भूवैज्ञानिक पर्वत-श्रेणी (continuous geological ridge) के रूप में देखते हुए व्यापक सतत खनन योजना (Sustainable minning plan) की आवश्यकता बताई थी।

यही कारण है कि अरावली की समस्या किसी एक जिले या किसी एक राज्य की समस्या नहीं है। यदि एक स्थान पर पहाड़ काटा जाता है, तो उसका असर जल-प्रवाह, धूल, जैव-विविधता और स्थानीय पारिस्थितिकी पर पड़ सकता है। इसी प्रकार यदि एक क्षेत्र को संरक्षण दिया जाता है लेकिन उसके आसपास के जुड़े हुए प्राकृतिक क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर निर्माण या खनन होता है, तो संरक्षण का उद्देश्य कमजोर हो सकता है।

25 दिसम्बर 2025 के आसपास सार्वजनिक बहस में एक और महत्वपूर्ण बात सामने आई—**पारदर्शिता की आवश्यकता।** पर्यावरणीय निर्णयों में जनता का विश्वास तभी मजबूत होता है जब मानचित्र, वैज्ञानिक आधार, सर्वेक्षण और निर्णय लेने की प्रक्रिया स्पष्ट हो। अरावली की परिभाषा को लेकर विवाद ने यही दिखाया कि केवल यह कहना पर्याप्त नहीं है कि कोई परिभाषा वैज्ञानिक है। यह भी दिखाना जरूरी है कि वह विज्ञान किस डेटा पर आधारित है, उसकी सीमा क्या है और उसका जमीन पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

यही कारण है कि बाद की न्यायिक प्रक्रिया में विशेषज्ञों और हितधारकों की भूमिका महत्वपूर्ण हुई। अदालत ने स्वतंत्र विशेषज्ञ राय की आवश्यकता पर जोर दिया और विभिन्न राज्यों तथा संबंधित पक्षों को प्रक्रिया में शामिल किया। इस प्रकार अरावली का भविष्य केवल सरकारी विभागों और खनन कंपनियों के निर्णय पर निर्भर नहीं रहा, बल्कि न्यायिक और वैज्ञानिक समीक्षा का विषय बन गया।

अरावली की सुरक्षा के संदर्भ में स्थानीय समुदायों की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। किसी गांव के लोग वर्षों से यह जानते हैं कि किस पहाड़ी से बरसात का पानी किस दिशा में जाता है, कौन-सा प्राकृतिक नाला कब बहता है, कहां भूजल मिलता है और कौन-से जंगल में वन्यजीव आते-जाते हैं। आधुनिक भौगोलिक सूचना प्रणाली (GIS) और उपग्रह-आधारित मानचित्रण (satellite mapping) अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, लेकिन स्थानीय ज्ञान को पूरी तरह नजरअंदाज करके बनाई गई पर्यावरणीय नीति अधूरी हो सकती है।

इसीलिए भविष्य की अरावली परिभाषा में भू-विज्ञान के साथ-साथ जल-विज्ञान, जैव-विविधता, वनस्पति, वन्यजीव गलियारा, जलग्रहण क्षेत्र और भूमि उपयोग का अध्ययन होना आवश्यक है। यदि किसी छोटी पहाड़ी की ऊंचाई कम है लेकिन वह एक बड़े पुनर्भरण क्षेत्र (पुनर्भरण zone) का हिस्सा है, तो उसे केवल ऊंचाई के आधार पर महत्वहीन नहीं माना जाना चाहिए।

यहां से अरावली की पूरी बहस का सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न सामने आता है—**क्या कानून प्रकृति को परिभाषित करेगा या प्रकृति की वास्तविकता को समझकर कानून बनाया जाएगा?** सही रास्ता दूसरा होना चाहिए।

कानून को स्पष्टता चाहिए, लेकिन स्पष्टता का अर्थ संकीर्णता नहीं है। वैज्ञानिक परिभाषा का अर्थ केवल एक संख्या तय करना नहीं है। वैज्ञानिक परिभाषा का अर्थ यह समझना है कि कोई प्राकृतिक क्षेत्र वास्तव में किस प्रकार काम करता है। यदि अरावली की कोई छोटी पहाड़ी भूजल, वन्यजीव, वनस्पति और मिट्टी संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण है, तो उसकी सुरक्षा का आधार उसके पारिस्थितिक कार्य में भी होना चाहिए।

इसी संदर्भ में 24 दिसम्बर के केंद्र सरकार के निर्देश और 29 दिसम्बर के सुप्रीम कोर्ट के आदेश को साथ पढ़ना उपयोगी है। केंद्र ने नए खनन पट्टे पर रोक और वैज्ञानिक प्रबंधन योजना की दिशा में कदम उठाया, जबकि सुप्रीम कोर्ट ने अपनी पहले की परिभाषा को फिलहाल रोककर स्वतंत्र विशेषज्ञ समीक्षा की आवश्यकता को स्वीकार किया। इससे यह संकेत मिला कि अरावली का भविष्य केवल "खनन होगा या नहीं होगा" जैसे सरल प्रश्न से तय नहीं किया जा सकता। असली प्रश्न यह है कि **कहां खनन बिल्कुल नहीं होना चाहिए, कहां सीमित गतिविधि संभव है, और पूरे परिदृश्य को कैसे सुरक्षित रखा जाए।**

इस घटनाक्रम का एक और महत्वपूर्ण पहलू है—**अपरिवर्तनीय नुकसान से बचना।** सुप्रीम कोर्ट ने 29 दिसम्बर को स्पष्ट रूप से कहा कि वर्तमान ढांचे के

आधार पर ऐसे प्रशासनिक या पारिस्थितिकीय कदम नहीं उठाए जाने चाहिए जिनसे बाद में नुकसान को वापस करना कठिन हो। यह पर्यावरण संरक्षण के सावधानी सिद्धांत की भावना से जुड़ा दृष्टिकोण है।

इसका अर्थ यह नहीं कि अदालत ने अरावली में हर गतिविधि को हमेशा के लिए बंद कर दिया। बल्कि अदालत ने यह सुनिश्चित करने की कोशिश की कि जब तक वैज्ञानिक और कानूनी स्थिति स्पष्ट न हो, तब तक ऐसे कदम न उठें जिनसे अरावली को स्थायी नुकसान पहुंच सकता है। यही इस पूरे घटनाक्रम का सबसे बड़ा संदेश है।

25 दिसम्बर 2025 के आसपास देश में अरावली को लेकर जो बहस हुई, उसने यह स्पष्ट कर दिया कि अरावली का प्रश्न केवल खनन का प्रश्न नहीं है। यह पानी का प्रश्न है, पर्यावरण का प्रश्न है, जैव-विविधता का प्रश्न है, स्थानीय समुदायों का प्रश्न है और आने वाली पीढ़ियों के अधिकार का प्रश्न है।

अरावली को बचाने का अर्थ यह नहीं कि हर विकास परियोजना को रोक दिया जाए। इसका अर्थ यह है कि विकास का निर्णय प्राकृतिक सीमाओं को समझकर लिया जाए। जहां पहाड़ काटने से भूजल और पर्यावरण पर गंभीर प्रभाव पड़ेगा, वहां संरक्षण को प्राथमिकता मिले। जहां वैज्ञानिक अध्ययन यह दिखाए कि सीमित गतिविधि संभव है, वहां कठोर पर्यावरणीय शर्तों के साथ गतिविधि हो। और जहां प्राकृतिक क्षेत्र अत्यंत संवेदनशील हैं, वहां किसी प्रकार का विनाशकारी हस्तक्षेप न हो।

इसलिए 25 दिसम्बर 2025 के आसपास का दौर अरावली विवाद में एक चेतावनी की तरह सामने आया। 20 नवम्बर के फैसले ने एक समान परिभाषा देने का प्रयास किया था। उस परिभाषा को लेकर उठे सवालों ने अदालत और सरकार दोनों को यह सोचने पर मजबूर किया कि क्या केवल ऊंचाई आधारित मानदंड पर्याप्त हैं। 24 दिसम्बर को केंद्र ने नए खनन पट्टों पर रोक और वैज्ञानिक प्रबंधन योजना की दिशा में कदम उठाया। फिर 29 दिसम्बर को सुप्रीम कोर्ट ने 20 नवम्बर की व्यवस्था को फिलहाल रोककर स्वतंत्र विशेषज्ञ समीक्षा का रास्ता खोला।

इसलिए इस अध्याय का निष्कर्ष बहुत स्पष्ट है—**25 दिसम्बर 2025 को कोई अलग सुप्रीम कोर्ट आदेश नहीं आया था, लेकिन उस तारीख के आसपास अरावली विवाद अपने सबसे महत्वपूर्ण न्यायिक और सार्वजनिक मोड़ पर पहुंच चुका था।** यह वह समय था जब 20 नवम्बर की परिभाषा पर गंभीर सवाल

उठ रहे थे, सरकार ने संरक्षणात्मक कदम उठाए और कुछ ही दिनों बाद सुप्रीम कोर्ट ने स्वयं अपने पहले निर्णय को फिलहाल रोक दिया।

अरावली के भविष्य के लिए अदालत का सबसे महत्वपूर्ण संकेत यही था कि **परिभाषा ऐसी होनी चाहिए जो प्रशासनिक रूप से स्पष्ट होने के साथ-साथ पर्यावरणीय रूप से सुरक्षित भी हो।** केवल किसी क्षेत्र को तकनीकी या प्रशासनिक मानदंडों के आधार पर परिभाषित कर देना पर्याप्त नहीं है, बल्कि यह भी सुनिश्चित करना आवश्यक है कि उस परिभाषा के कारण संरक्षण के दायरे में कोई ऐसी कमी न आए, जिससे अरावली के संवेदनशील पारिस्थितिक तंत्र को नुकसान पहुँचे। यदि किसी परिभाषा से संरक्षण में ऐसी कमी पैदा होने की आशंका हो, जिससे अपरिवर्तनीय पर्यावरणीय नुकसान हो सकता है, तो न्यायिक सावधानी आवश्यक है। ऐसी स्थिति में वैज्ञानिक तथ्यों, पर्यावरणीय प्रभावों और प्राकृतिक तंत्र की वास्तविक स्थिति को ध्यान में रखकर निर्णय लेना अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है।

अरावली की वास्तविक रक्षा केवल कागज पर उसकी सीमा तय करने से नहीं होगी। उसकी रक्षा तब होगी जब उसकी पहाड़ियों, ढलानों, जंगलों, जलग्रहण क्षेत्रों, जलस्रोतों, भूजल पुनर्भरण क्षेत्रों, जैव-विविधता और प्राकृतिक निरंतरता को एक साथ देखा जाएगा। अरावली का कोई भी भाग अपने आसपास के प्राकृतिक तंत्र से अलग नहीं है। एक पहाड़ी केवल एक भौगोलिक संरचना नहीं होती; वह वर्षाजल को रोकने, उसे भूमि में पहुँचाने, मिट्टी के संरक्षण, वनस्पतियों और वन्यजीवों को आश्रय देने तथा स्थानीय जलवायु को संतुलित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। इसलिए संरक्षण की दृष्टि से उसके पूरे पारिस्थितिक संबंधों को समझना आवश्यक है।

इसी कारण अरावली की पहचान केवल ऊँचाई, आकार या किसी एक तकनीकी मानक तक सीमित नहीं की जा सकती। किसी क्षेत्र का पर्यावरणीय महत्व उसके प्राकृतिक कार्यों, आसपास के क्षेत्रों से उसके संबंध और पूरे पारिस्थितिक तंत्र में उसकी भूमिका से निर्धारित होता है। यदि किसी छोटी पहाड़ी या ढलान को केवल इसलिए संरक्षण से बाहर कर दिया जाए कि वह निर्धारित ऊँचाई की सीमा को पूरा नहीं करती, तो उसके साथ जुड़े जलग्रहण क्षेत्र, वनस्पति, जैव-विविधता और भूजल पुनर्भरण की भूमिका भी प्रभावित हो सकती है। इसलिए परिभाषा बनाते समय केवल माप नहीं, बल्कि उसके पर्यावरणीय परिणामों को भी समान महत्व देना आवश्यक है।

अंततः अरावली के संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह नहीं है कि किसी पहाड़ी की ऊँचाई 99 मीटर है या 101 मीटर। असली प्रश्न यह है कि वह पहाड़ी हमारे पर्यावरण के लिए क्या भूमिका निभाती है। **क्योंकि प्रकृति संख्या से नहीं, अपने**

पूरे तंत्र से काम करती है। जल, जंगल, मिट्टी, भूजल, जैव-विविधता और मानव जीवन एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं और इनके बीच किसी एक कड़ी को कमजोर करने का प्रभाव पूरे क्षेत्र पर पड़ सकता है। इसलिए अरावली के संरक्षण की दृष्टि से ऐसी व्यवस्था आवश्यक है, जो उसके प्राकृतिक स्वरूप और पारिस्थितिक कार्यों को समग्र रूप से समझे।

अरावली के मामले में यह सोच और भी महत्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि इसका प्रभाव केवल पहाड़ी क्षेत्रों तक सीमित नहीं है। यह जल-सुरक्षा, भूजल, मरुस्थलीकरण की रोकथाम, वनावरण, जैव-विविधता और आसपास के मानव बस्तियों के पर्यावरणीय संतुलन से जुड़ा हुआ है। इसलिए इसके संरक्षण को केवल भूमि-सीमा या प्रशासनिक वर्गीकरण का विषय मानना पर्याप्त नहीं होगा। इसके लिए विज्ञान, कानून, पर्यावरणीय अध्ययन और स्थानीय वास्तविकताओं के बीच संतुलित दृष्टिकोण आवश्यक है।

और अरावली के मामले में यही वह सोच है, जिसने दिसम्बर 2025 के घटनाक्रम को एक साधारण कानूनी विवाद से उठाकर भारत के पर्यावरणीय भविष्य की बहस बना दिया। यह बहस केवल किसी पर्वत-श्रृंखला की परिभाषा तय करने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह तय करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है कि विकास और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन किस प्रकार स्थापित किया जाए। आने वाले समय में अरावली के संरक्षण के लिए ऐसी दृष्टि आवश्यक होगी, जिसमें वैज्ञानिक प्रमाण, न्यायिक विवेक, प्रशासनिक स्पष्टता और पर्यावरणीय सुरक्षा—सभी को एक साथ स्थान मिले। यही दृष्टिकोण अरावली को केवल वर्तमान पीढ़ी के लिए नहीं, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए भी सुरक्षित रखने का आधार बन सकता है।

3.

अरावली की असली पहचान क्या है? — सुप्रीम कोर्ट, विशेषज्ञ समिति और वैज्ञानिक सिद्धांत

अरावली को समझने की सबसे बड़ी गलती यह होगी कि हम उसे केवल ऊंचे-नीचे पहाड़ों की एक श्रृंखला मान लें। अरावली की असली पहचान इससे कहीं अधिक व्यापक है। यह करोड़ों वर्षों में विकसित हुआ एक प्राचीन भू-वैज्ञानिक और पारिस्थितिक तंत्र है, जिसकी पहाड़ियां, ढलान, घाटियां, चट्टानी भू-भाग, जंगल, जलग्रहण क्षेत्र, छोटी पहाड़ियां और उनके बीच के प्राकृतिक क्षेत्र एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। इसी कारण अरावली की पहचान का प्रश्न केवल भूगोल का प्रश्न नहीं है। यह पानी, जंगल, मिट्टी, जैव-विविधता, मरुस्थलीकरण, खनन और मानव जीवन के भविष्य से जुड़ा हुआ प्रश्न है। स्वयं सुप्रीम कोर्ट ने 20 नवम्बर 2025 के अपने निर्णय में अरावली को भारत की सबसे पुरानी **वलित पर्वत** (fold mountain) प्रणालियों में से एक बताया और कहा कि इसका पारिस्थितिक तंत्र उत्तर भारत की जलवायु तथा जैव-विविधता को प्रभावित करता है। अदालत ने यह भी कहा कि अरावली एक **हरित अवरोध** (green barrier) की तरह काम करती है और थार के मरुस्थलीय विस्तार को पूर्व की ओर बढ़ने से रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

यहीं से यह सवाल पैदा होता है कि यदि अरावली इतनी व्यापक प्राकृतिक व्यवस्था है, तो उसकी कानूनी पहचान कैसे तय की जाए? क्या केवल यह देखकर कि कोई पहाड़ी स्थानीय जमीन से 100 मीटर ऊंची है, यह तय किया जा सकता है कि वह अरावली का हिस्सा है या नहीं? या फिर उसके भूगर्भीय स्वरूप, आसपास के भू-भाग, जलग्रहण क्षेत्र, वनस्पति, जैव-विविधता और दूसरी पहाड़ियों से उसके प्राकृतिक संबंध को भी देखा जाना चाहिए? वर्ष 2025 के न्यायिक घटनाक्रम और उसके बाद 2026 में गठित हाई-पावर्ड विशेषज्ञ समिति ने इसी मूल प्रश्न को फिर से केंद्र में ला दिया है।

इस पूरे विवाद की शुरुआत वास्तव में 2024 में हुई न्यायिक प्रक्रिया से हुई थी। 10 जनवरी 2024 को सुप्रीम कोर्ट के सामने यह प्रश्न आया कि अरावली हिल्स और अरावली रेंज की पहचान को लेकर अलग-अलग व्यवस्थाओं के कारण खनन गतिविधियों की कानूनी स्थिति स्पष्ट नहीं है। अदालत ने केंद्रीय अधिकारप्राप्त समिति [Central Empowered Committee]-(CEC) को इस विषय की जांच करने को कहा और विशेष रूप से भू-विज्ञान के विशेषज्ञों को शामिल करने की

आवश्यकता बताई। CEC ने 7 मार्च 2024 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में पूरे अरावली क्षेत्र की मानचित्रण, खनन-प्रभावित क्षेत्रों का व्यापक स्तर पर्यावरण प्रभाव आकलन, भूजल पुनर्भरण क्षेत्रों की सुरक्षा, संरक्षित क्षेत्र और वन्यजीव गलियारे में खनन पर रोक तथा परित्यक्त खदानें की पुनर्वास / भूमि पुनरुद्धार जैसी अनेक सिफारिशें की गई थीं।

CEC की सिफारिशों को ध्यान से देखें तो उसमें अरावली की पहचान को केवल ऊंचाई से नहीं जोड़ा गया था। पूरी अरावली रेंज की मानचित्रण और भू-टैगिंग की बात की गई थी। खनन-प्रभावित जिलों का व्यापक पर्यावरणीय अध्ययन करने की सिफारिश थी। संरक्षित क्षेत्र, बाघ आरक्षित क्षेत्र, वन्यजीव गलियारे, आर्द्रभूमियाँ, भूजलभृत और पुनर्भरण क्षेत्र जैसे क्षेत्रों को विशेष सुरक्षा देने की बात कही गई थी। यहां तक कि उन खानों को बंद करने की सिफारिश की गई थी जो भूजल स्तर तक पहुंच चुकी थीं, क्योंकि ऐसी खनन से भूमिगत जलभृत को नुकसान और भूजल की बर्बादी हो सकती है।

इससे एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक सिद्धांत सामने आता है—**किसी पहाड़ी का महत्व केवल उसकी ऊंचाई से तय नहीं होता।** उसकी पारिस्थितिक भूमिका भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। यदि किसी छोटी पहाड़ी के नीचे भूजल का पुनर्भरण होता है, यदि वह दो वन क्षेत्रों को जोड़ती है, यदि वह वर्षा के पानी के प्राकृतिक प्रवाह को नियंत्रित करती है या यदि वह वन्यजीवों के आवागमन का रास्ता है, तो उसका महत्व उसके मीटर में मापे गए कद से कहीं अधिक हो सकता है।

इसके बाद केंद्र सरकार के पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय से जुड़े विशेषज्ञों और समिति की प्रक्रिया में अरावली की एक क्रियात्मक परिभाषा सामने आई। 20 नवम्बर 2025 के सुप्रीम कोर्ट के फैसले में इस परिभाषा को स्वीकार किया गया। इसके अनुसार अरावली जिलों में ऐसी कोई भू-आकृति जिसकी local relief से ऊंचाई 100 मीटर या उससे अधिक हो, उसे अरावली हिल माना गया। यहां स्थानीय उच्चावच (local relief) का अर्थ समुद्र तल से ऊंचाई नहीं है, बल्कि आसपास की स्थानीय भूमि के संदर्भ में उस भू-आकृति की ऊंचाई है। इस परिभाषा में केवल पहाड़ी का ऊपरी हिस्सा नहीं बल्कि सबसे निचले समोच्च रेखा (Lowest Contour) से घिरी पूरी भू-आकृति, जिसमें सहायक ढालें और संबंधित भू-आकृतियां भी शामिल की गईं।

इसके साथ दूसरी महत्वपूर्ण सीमा 500 मीटर की थी। दो या अधिक ऐसी अरावली पहाड़ियां, जो एक-दूसरे के 500 मीटर के भीतर हों, मिलकर अरावली रेंज बना सकती थीं। उनके बीच आने वाली भूमि, छोटी पहाड़ियां, ढालें और संबंधित भू-

आकृतियाँ को भी रेंज की पहचान में शामिल करने का प्रावधान था। इसलिए यह कहना सही नहीं होगा कि 100 मीटर से कम ऊंचाई वाली हर जमीन को स्वतः अरावली से बाहर कर दिया गया था और वहां खनन खुल गया था। सरकारी स्पष्टीकरण में भी कहा गया कि 100 मीटर से कम ऊंचाई वाले सभी भू-आकृतियाँ अपने-आप खनन के लिए खुले नहीं हो जाते; कई अन्य पर्यावरणीय और कानूनी प्रतिबंध लागू रहते हैं।

लेकिन यहीं से विवाद शुरू हुआ। आलोचकों ने सवाल उठाया कि क्या 100 मीटर की सीमा अरावली जैसे अत्यंत पुराने और लंबे समय से अपरदन (erosion) का सामना कर रहे पर्वतीय तंत्र की वास्तविक पारिस्थितिक निरंतरता को पकड़ सकती है। यदि दो महत्वपूर्ण पहाड़ियां 500 मीटर से अधिक दूरी पर हैं, लेकिन भूगर्भीय और पारिस्थितिक रूप से एक ही भूदृश्य का हिस्सा हैं, तो क्या उनके बीच का क्षेत्र केवल इसलिए "गैर-अरावली" माना जाना चाहिए क्योंकि दूरी 500 मीटर से अधिक है? यही प्रश्न बाद में सुप्रीम कोर्ट की पुनर्विचार प्रक्रिया का एक प्रमुख हिस्सा बन गया।

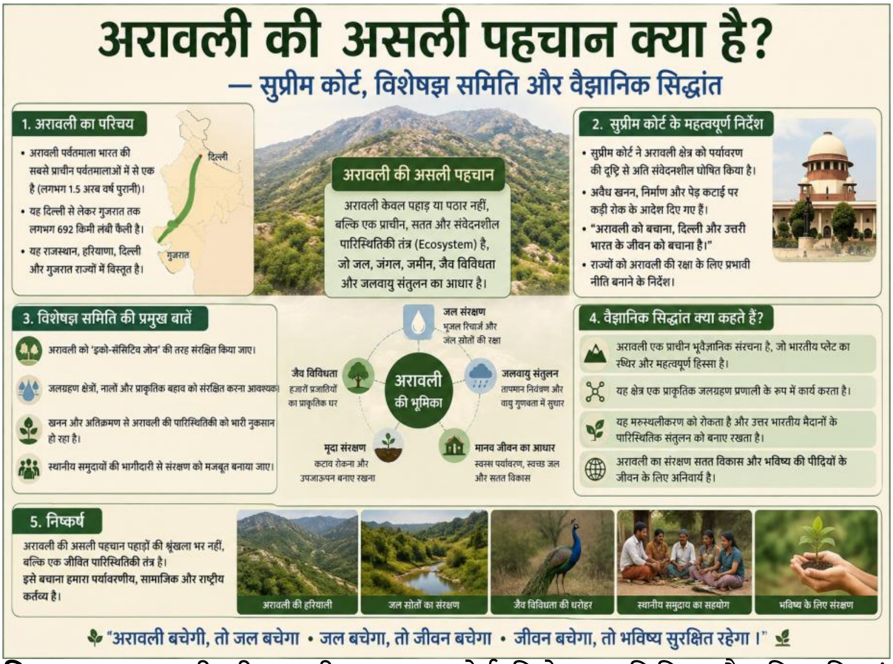

चित्र-3.1: अरावली की असली पहचान –कोर्ट, विशेषज्ञ-समिति व वैज्ञानिक सिद्धांत

29 दिसम्बर 2025 को सुप्रीम कोर्ट ने इसी चिंता को बहुत स्पष्ट रूप से सामने रखा। अदालत ने पूछा कि क्या केवल 500 मीटर के बीच के क्षेत्र को अरावली रेंज मानने

से संरक्षित क्षेत्र अत्यधिक संकीर्ण हो सकती है। अदालत ने यह भी पूछा कि क्या इससे ऐसे पारिस्थितिक रूप से जुड़े **(**ecologically contiguous**)** क्षेत्रों का एक बड़ा हिस्सा "अरावली क्षेत्र से बाहर" हो सकता है, जहाँ अनियंत्रित खनन या अन्य विघटनकारी गतिविधियों का खतरा पैदा हो। अदालत ने आगे यह प्रश्न भी उठाया कि यदि 100 मीटर या उससे अधिक ऊंचाई वाली पहाड़ियां 500 मीटर से अधिक दूरी पर होने के बावजूद एक सन्निहित पारिस्थितिक संरचना का हिस्सा हैं, तो उनके बीच के क्षेत्र की स्थिति क्या होगी।

यह प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि प्रकृति प्रशासनिक सीमा या निश्चित दूरी के अनुसार काम नहीं करती। एक जंगल अचानक किसी सरकारी नक्शे की सीमा पर समाप्त नहीं होता। एक जलग्रहण क्षेत्र भी 500 मीटर की रेखा पर अपना प्राकृतिक काम बंद नहीं करता। इसी प्रकार वन्यजीवों का आवागमन भी इस बात पर निर्भर नहीं करता कि किसी भू-भाग को सरकारी रिकॉर्ड में अरावली कहा गया है या नहीं।

इसलिए वैज्ञानिक दृष्टि से अरावली को समझने के लिए "भूदृश्य दृष्टिकोण" (landcape approach) आवश्यक हो जाती है। भूदृश्य दृष्टिकोण का अर्थ है कि पहाड़ी, घाटी, जलग्रहण क्षेत्र, जंगल, नदी-नाला, मिट्टी, भूजल और जीव-जंतुओं के आवास को अलग-अलग टुकड़ों में देखने के बजाय एक जुड़े हुए तंत्र के रूप में देखा जाए। सुप्रीम कोर्ट की बाद की प्रक्रिया में यही सोच दिखाई देती है। 2026 में अदालत ने स्पष्ट किया कि प्रस्तावित हाई-पावर्ड समिति को भूविज्ञान एवं मृदा की विशेषताएँ, जैव विविधता, वनस्पति एवं जीव-जंतु, खनिज संपदा, प्राकृतिक संसाधन तथा सटीक भू-मानचित्रण—इन सभी पहलुओं को साथ लेकर चलना होगा।

यहां "**भौगोलिक मानचित्रण**" विशेष महत्व रखती है। अरावली की असली सीमा केवल पुराने राजस्व रिकॉर्ड देखकर तय नहीं की जा सकती। आधुनिक उपग्रह चित्रण (Satellite Imagery), डिजिटल उन्नयन मॉडल (Digital Elevation Models), समोच्च रेखा मानचित्रण (contour mapping), भूवैज्ञानिक मानचित्र (Geological maps), दूरसंवेदी तकनीक (Remote Sensing) और स्थलीय सत्यापन (Ground Verification) की सहायता से यह पता लगाना आवश्यक है कि कौन-सी भू-आकृति वास्तव में किस भूवैज्ञानिक संरचना का हिस्सा है। इसी कारण 2024 की CEC सिफारिशों में पूरे अरावली क्षेत्र की मानचित्रण और भू-टैगिंगपर जोर दिया गया था।

लेकिन मानचित्रण भी अकेली पर्याप्त नहीं है। यदि किसी पहाड़ी की ऊंचाई और समोच्च रेखा सही ढंग से माप ली जाए, तब भी यह प्रश्न बना रहेगा कि उस भू-भाग की पारिस्थितिक महत्त्व क्या है। उदाहरण के लिए कोई छोटी पहाड़ी किसी

पुनर्भरण zone के ऊपर हो सकती है। वर्षा का पानी उसकी ढलानों से नीचे जाकर aquifer में पहुंच सकता है। यदि उस क्षेत्र को काटकर पत्थर की खदान बना दिया जाए या बड़े पैमाने पर निर्माण कर दिया जाए तो पानी के प्राकृतिक प्रवाह और पुनर्भरण दोनों पर असर पड़ सकता है। इसलिए भूजल विज्ञान को भी अरावली की पहचान में स्थान देना आवश्यक है।

CEC की 2024 रिपोर्ट में इसी कारण जलभृत और भूजल पुनर्भरण क्षेत्र को विशेष संरक्षण योग्य क्षेत्रों में शामिल करने की सिफारिश की गई थी। रिपोर्ट ने उन क्षेत्रों में खनन से बचने की आवश्यकता बताई जहां भूजल के स्रोत या पुनर्भरण क्षेत्र मौजूद हैं। उसने यह भी कहा कि जो खदानें भूजल स्तर तक पहुंच गई हैं, उन्हें बंद किया जाना चाहिए ताकि भूमिगत जलभृत को नुकसान न पहुंचे और पानी की बर्बादी रोकी जा सके।

अरावली की पहचान में मिट्टी का भी महत्वपूर्ण स्थान है। पहाड़ केवल चट्टान नहीं होते। उनके ऊपर और आसपास की मिट्टी वर्षा के पानी को रोकने, वनस्पति को सहारा देने और अपरदन को नियंत्रित करने का काम करती है। यदि खनन के दौरान ऊपरी मृदा हट जाती है और पहाड़ी की प्राकृतिक संरचना टूट जाती है, तो केवल चट्टान नहीं हटती बल्कि पूरा पारिस्थितिक चक्र प्रभावित होता है। इसीलिए सुप्रीम कोर्ट द्वारा 2026 में गठित हाई-पावर्ड समिति के लिए भूविज्ञान और मृदा विशेषताएँ को विशेष अध्ययन क्षेत्र बनाया गया।

अरावली की असली पहचान में जैव-विविधता भी एक मूल तत्व है। पहाड़ों के बीच के जंगल, झाड़ियां, घासभूमियाँ और जलस्रोत अनेक प्रजातियाँ के लिए प्राकृतिक आवास और आवागमन गलियारे प्रदान करते हैं। यदि इन क्षेत्रों को छोटे-छोटे टुकड़ों में बांट दिया जाए तो वन्यजीव आबादियाँ अलग-थलग पड़ सकती हैं। CEC ने 2024 में संरक्षित क्षेत्र, बाघ गलियारे और वन्यजीव-संवेदनशील क्षेत्रों में खनन पर कड़े प्रतिबंधों की सिफारिश की थी।

यही कारण है कि अरावली को केवल "खनन मानचित्र" के रूप में देखना वैज्ञानिक रूप से पर्याप्त नहीं होगा। हमें एक पारिस्थितिक मानचित्र भी चाहिए। उसमें यह दिखना चाहिए कि कौन-से क्षेत्र वन्यजीव प्राकृतिक आवास हैं, कौन-से गलियारे हैं, कौन-से आर्द्रभूमियाँ हैं, कौन-से भूजल पुनर्भरण क्षेत्र हैं, कौन-से वन खंड आपस में जुड़े हैं और किन क्षेत्रों में मानव बस्तियाँ का पारिस्थितिक निर्भरता अधिक है।

सुप्रीम कोर्ट ने 20 नवम्बर 2025 के निर्णय में अरावली की अंतरराष्ट्रीय पर्यावरणीय जिम्मेदारियों की ओर भी ध्यान दिलाया। भारत ने मरुस्थलीकरण से निपटने के लिए संयुक्त राष्ट्र अभिसमय (UNCCD) को 17 दिसम्बर 1996 को अनुसमर्थन करना

किया था। इस व्यवस्था के तहत भारत को मरुस्थलीकरण और भूमि क्षरण से निपटने, भूमि और जल संसाधन के संरक्षण तथा रोकथाम के उपाय को बढ़ावा देने की जिम्मेदारी है। सुप्रीम कोर्ट ने इसी संदर्भ में कहा कि अरावली का संरक्षण और पुनर्स्थापन एक वैज्ञानिक तथा सतत दृष्टिकोण के साथ किया जाना चाहिए और इसमें पूर्व सावधानी का सिद्धांत का मार्गदर्शन होना चाहिए।

सावधानी का सिद्धांत को सरल भाषा में समझें तो इसका अर्थ है—यदि किसी गतिविधि से गंभीर पर्यावरणीय नुकसान की आशंका है और वैज्ञानिक जानकारी पूरी तरह स्पष्ट नहीं है, तो केवल इस कारण से गतिविधि को अनुमति नहीं दी जानी चाहिए कि अभी नुकसान पूरी तरह सिद्ध नहीं हुआ है। पहले सावधानी बरतना जरूरी है। अरावली जैसे संवेदनशील और प्राचीन पारिस्थितिकी तंत्र में यह सिद्धांत विशेष महत्व रखता है क्योंकि पहाड़ काटने या प्राकृतिक जलग्रहण क्षेत्र नष्ट होने के बाद नुकसान को वापस करना बहुत कठिन हो सकता है।

यही विचार सतत विकास से भी जुड़ता है। सतत विकास का अर्थ विकास को रोक देना नहीं है। इसका अर्थ है कि वर्तमान की आर्थिक जरूरतें पूरी करते समय प्राकृतिक संसाधनों को इस तरह नष्ट न किया जाए कि भविष्य की पीढ़ियों के लिए वे उपलब्ध ही न रहें। अरावली के मामले में यही संतुलन सबसे कठिन है। खनन से रोजगार, निर्माण सामग्री और आर्थिक गतिविधि मिल सकती है, लेकिन अनियंत्रित खनन से पहाड़, जंगल, पानी और स्थानीय पर्यावरण को स्थायी नुकसान भी हो सकता है। इसलिए प्रश्न "**खनन बनाम संरक्षण**" का नहीं बल्कि "कहां, कितना और किन शर्तों पर खनन संभव है" का है।

20 नवम्बर 2025 के फैसले में इसी संतुलन को ध्यान में रखते हुए सतत खनन प्रस्ताव (MPSM) की बात की गई थी। सरकार के अनुसार, नई क्रियात्मक परिभाषा का उद्देश्य केवल खनन को आसान बनाना नहीं था, बल्कि मानचित्रण, अक्षुण्ण क्षेत्र. क्षेत्र की पहचान, सतत खनन और अवैध खनन रोकने के लिए अधिक स्पष्ट व्यवस्था बनाना था।

फिर भी 29 दिसम्बर 2025 के बाद सुप्रीम कोर्ट ने यह माना कि इतनी दूरगामी प्रभाव वाली व्यवस्था को लागू करने से पहले स्वतंत्र विशेषज्ञ समीक्षा जरूरी है। अदालत ने विशेष रूप से कहा कि यह जांचना आवश्यक है कि नई परिभाषा से कितने क्षेत्र संरक्षण में आएंगे और कितने बाहर रह जाएंगे। इसके साथ यह भी देखना होगा कि जो क्षेत्र परिभाषा से बाहर होंगे, क्या उनके बाहर रह जाने से भविष्य में उनकी क्षरण / कटाव (degradation) / erasure) का खतरा पैदा हो सकता है।

अदालत ने अल्पकालिक और दीर्घकालिक पर्यावरणीय प्रभावों का बहु-कालिक आकलन करने की आवश्यकता भी बताई।

यहां अदालत की सोच का सबसे महत्वपूर्ण पहलू सामने आता है—सिर्फ यह देखना पर्याप्त नहीं है कि नई परिभाषा कानूनी रूप से स्पष्ट है; यह भी देखना होगा कि उसके लागू होने का वास्तविक पर्यावरणीय परिणाम क्या होगा।

यही कारण है कि 2026 में सुप्रीम कोर्ट ने पांच सदस्यीय उच्चाधिकार प्राप्त समिति गठित करने का निर्देश दिया। 25 मई 2026 के आदेश के अनुसार समिति की अध्यक्षता भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद (ICFRE) के महानिदेशक को करनी है। इसमें भारतीय वन सर्वेक्षण (Forest Survey of India) के पूर्व महानिदेशक, भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण (Geological Survey of India) के पूर्व निदेशक स्तर के विशेषज्ञ, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय (MoEFCC) के पूर्व संयुक्त सचिव तथा दिल्ली विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग के पूर्व प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष को सदस्य बनाया गया है। इसके अलावा पर्यावरण एवं सततता से जुड़े दो विशेष आमंत्रित विशेषज्ञों को भी शामिल किया गया है।

यह समिति इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें अलग-अलग विषयों के विशेषज्ञ शामिल हैं। अरावली की पहचान केवल भूवैज्ञानिक तय नहीं कर सकता, क्योंकि इसमें जैव विविधता और वनस्पति भी महत्वपूर्ण हैं। केवल वनस्पतिशास्त्री भी पूरी तस्वीर नहीं दे सकता, क्योंकि भूवैज्ञानिक संरचना और खनिज विशेषताओं को समझना आवश्यक है। केवल वन सर्वेक्षण भी पर्याप्त नहीं होगा, क्योंकि इसमें भूजल, मृदा और मानव निर्भरता जैसे विषय भी जुड़े हुए हैं। इसलिए **बहुविषयक दृष्टिकोण** आवश्यक है।

सुप्रीम कोर्ट ने 25 मई 2026 के आदेश में स्पष्ट कहा कि इतने दूरगामी परिणाम वाले निर्णय विशेषज्ञ मूल्यांकन के बिना नहीं लिए जाने चाहिए। समिति का उद्देश्य यह देखना है कि प्रस्तावित परिभाषा और उससे जुड़े उपायों के पारिस्थितिक, पर्यावरणीय तथा अन्य संभावित परिणाम क्या हो सकते हैं और क्या उनमें से कुछ ऐसे हैं जिन्हें बाद में वापस करना कठिन या असंभव हो सकता है। अदालत ने इसे वैज्ञानिक रूप से सुदृढ़ तथा सतत विकास के सिद्धांतों के अनुरूप निर्णय लेने के लिए आवश्यक बताया है।

समिति को यह भी देखना है कि 100 मीटर की सीमा को लेकर सार्वजनिक चर्चा में जो आंकड़े सामने आए हैं, वे वैज्ञानिक रूप से सही हैं या नहीं। 29 दिसम्बर के आदेश में अदालत ने विशेष रूप से उस दावे की जांच की आवश्यकता बताई कि राजस्थान में 12,081 पहाड़ियों में से केवल 1,048 पहाड़ियां 100 मीटर की सीमा

पूरी करती हैं। अदालत ने कहा कि यह तथ्यात्मक और वैज्ञानिक रूप से सत्य है या नहीं, इसकी जांच आवश्यक है। यदि ऐसा कोई बड़ा नियामक अंतराल (Regulatory Gap) वास्तव में मौजूद है, तो सभी पहाड़ियों और छोटी पहाड़ियों (Hillocks) की ऊँचाई का व्यापक वैज्ञानिक एवं भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण किया जाना चाहिए।

यह तथ्य बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे यह स्पष्ट होता है कि सुप्रीम कोर्ट ने केवल राजनीतिक या सार्वजनिक दावों के आधार पर कोई निष्कर्ष नहीं निकाला। उसने कहा कि आंकड़ों को वैज्ञानिक तरीके से सत्यापित किया जाना चाहिए। इसका अर्थ है कि अरावली की भविष्य की परिभाषा भावनाओं, राजनीतिक आरोपों या केवल पुराने नक्शों पर आधारित नहीं होनी चाहिए। उसे सत्यापित वैज्ञानिक साक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए।

इसी क्रम में 25 मई 2026 के आदेश ने यह भी स्पष्ट किया कि समिति को केवल अदालत द्वारा पहले से बताए गए प्रश्नों तक सीमित नहीं रहना है। यदि जांच के दौरान कोई नया वैज्ञानिक या पर्यावरणीय प्रश्न सामने आता है, तो समिति उसे भी अपने अध्ययन में शामिल कर सकती है। अदालत ने समिति से व्यापक और समग्र (Holistic) मूल्यांकन करने को कहा।

इससे अरावली की "असली पहचान" का वैज्ञानिक अर्थ धीरे-धीरे स्पष्ट होता है। अरावली की पहचान पांच या छह प्रमुख आधारों पर समझी जा सकती है। पहला है **भूविज्ञान**, यानी पहाड़ों की भूवैज्ञानिक उत्पत्ति और संरचना**।** दूसरा है **भू-आकृति** विज्ञान, यानी ऊँचाई, ढाल, समोच्च रेखाएँ, घाटियाँ और भू-आकृतियाँ**।** तीसरा है **जल-विज्ञान**, यानी वर्षा, जल निकासी, जलभृत और भूजल पुनर्भरण। चौथा है **जैव-विविधता**, यानी वन, वनस्पति, जीव-जंतु और वन्यजीव गलियारे। पाँचवाँ है **मृदा एवं भूमि क्षरण**, यानी अपरदन और भूमि क्षरण। और छठा है **मानवीय निर्भरता**, यानी गाँवों, किसानों, पशुपालकों, खनन श्रमिकों और स्थानीय समुदायों का पारिस्थितिकी तंत्र पर निर्भर जीवन।

सुप्रीम कोर्ट की 2026 की विशेषज्ञ समिति के निर्देशों में इन सभी क्षेत्रों का उल्लेख सीधे या अप्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है। अदालत ने भूविज्ञान, मृदा, जैव-विविधता, वनस्पति, जीव-जंतु, खनिज संपदा, प्राकृतिक संसाधनों और भू-मानचित्रण को साथ लेकर चलने की बात कही। साथ ही, उसने राज्यों, पर्यावरणविदों, संरक्षणवादियों, गैर-सरकारी संगठनों (NGOs), खनन पट्टाधारकों, परियोजना प्रस्तावकों, ग्रामीणों, किसानों, खनन श्रमिकों और स्थानीय समुदायों की बात सुनना भी आवश्यक माना।

इसका मतलब है कि अरावली की परिभाषा अब केवल "सरकार की बनाई हुई सीमा" का प्रश्न नहीं रह गई है। यह **वैज्ञानिक प्रमाण और सार्वजनिक भागीदारी** का प्रश्न बन गई है। यह लोकतांत्रिक पर्यावरणीय शासन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। जिस भूमि पर लाखों लोग रहते हैं और जिसका प्रभाव कई राज्यों के पर्यावरण पर पड़ता है, उसकी सीमा तय करने की प्रक्रिया में स्थानीय लोगों की आवाज को पूरी तरह नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

अरावली की असली पहचान का एक और महत्वपूर्ण पहलू उसका **भौगोलिक विस्तार** है। सुप्रीम कोर्ट ने 20 नवम्बर के निर्णय में अरावली को दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान और गुजरात में फैली अत्यंत प्राचीन भूवैज्ञानिक संरचना के रूप में देखा। अदालत ने इसके पर्यावरणीय प्रभाव को उत्तर भारत के व्यापक क्षेत्र से जोड़ा। इसका अर्थ यह है कि अरावली की रक्षा का प्रश्न केवल राजस्थान के कुछ पहाड़ों या हरियाणा के कुछ वन खंड तक सीमित नहीं है। इसका प्रभाव बड़े भूदृश्य पर पड़ता है।

यदि अरावली को एक जुड़े हुए पारिस्थितिकी तंत्र के रूप में देखा जाए तो इसकी **छोटी पहाड़ियाँ भी महत्वपूर्ण** हो जाती हैं। एक छोटी पहाड़ी स्वयं में बहुत बड़ी न दिखाई दे, लेकिन यदि वह दो बड़े पर्वतीय तंत्रों के बीच पारिस्थितिक संपर्क स्थापित करती है, तो उसका महत्व बढ़ जाता है। इसी प्रकार कोई छोटी घाटी या निचला क्षेत्र जलग्रहण के लिए आवश्यक हो सकता है। इसलिए **"**छोटा" होना "महत्वहीन" होने का प्रमाण नहीं है।

यही बात 500 मीटर की सीमा पर भी लागू होती है। 500 मीटर का मानदंड प्रशासनिक मानचित्रण में सुविधा दे सकता है, लेकिन वैज्ञानिक जांच को यह भी देखना होगा कि क्या 500 मीटर से बाहर का कोई क्षेत्र पारिस्थितिक निरंतरता का हिस्सा है। सुप्रीम कोर्ट ने इसी कारण 29 दिसम्बर के आदेश में इस प्रश्न को स्पष्ट रूप से विशेषज्ञ अध्ययन के लिए रखा।

इस पूरे मामले में एक और महत्वपूर्ण बात है—अरावली का संरक्षण केवल भविष्य के खनन को रोकने से पूरा नहीं होगा। पहले से क्षतिग्रस्त क्षेत्रों का पुनर्स्थापन भी आवश्यक है। केंद्रीय अधिकारप्राप्त समिति (CEC**)** ने परित्यक्त खनन स्थलों की पहचान कर उनके लिए स्थल-विशिष्ट पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन योजनाएँ तैयार करने की सिफारिश की थी। सुप्रीम कोर्ट ने भी अरावली के पुनर्स्थापन और पारिस्थितिक स्वास्थ्य को व्यापक संरक्षण प्रक्रिया का अभिन्न हिस्सा माना।

यह इसलिए जरूरी है क्योंकि कई क्षेत्रों में नुकसान पहले ही हो चुका है। पहाड़ काटे जा चुके हैं, प्राकृतिक जल निकासी तंत्र बदल चुके हैं और कुछ स्थानों पर

जंगल तथा वनस्पति को नुकसान पहुँचा है। केवल यह घोषणा कर देना कि आगे खनन नियंत्रित रहेगा, पुराने नुकसान को ठीक नहीं करता। पुनर्स्थापन के लिए मिट्टी की पुनर्स्थापना, स्थानीय प्रजातियों की वनस्पति की पुनर्वापसी, जल-संचयन, जल निकासी तंत्र में सुधार, परित्यक्त खदानों का पुनर्वास और वन्यजीवों के प्राकृतिक आवास की पुनर्बहाली जैसे कदम आवश्यक होंगे।

सुप्रीम कोर्ट के निर्णय में अरावली ग्रीन वॉल परियोजना का भी उल्लेख किया गया है। केंद्र सरकार ने क्षरित भूमि के पुनर्स्थापन, हरित आवरण बढ़ाने और मरुस्थलीकरण को रोकने के उद्देश्य से यह महत्वपूर्ण पहल शुरू की है। अदालत ने इसे अरावली पर्वतमाला के पारिस्थितिक महत्त्व की सरकारी मान्यता के रूप में देखा ।

इस प्रकार वैज्ञानिक सिद्धांत हमें यह बताते हैं कि अरावली की असली पहचान किसी एक संख्या में बंद नहीं की जा सकती। 100 मीटर एक परिचालन मानदंड हो सकता है, लेकिन पारिस्थितिकी तंत्र की पूरी पहचान नहीं। 500 मीटर एक मानचित्रण मानदंड हो सकता है, लेकिन पारिस्थितिक निरंतरता की अंतिम सीमा नहीं। वास्तविक वैज्ञानिक पहचान इन मानदंडों के साथ भूविज्ञान, मृदा, जल, जैव-विविधता, भूमि उपयोग और भूदृश्य संपर्कता को मिलाकर ही बन सकती है।

अंततः सुप्रीम कोर्ट का वर्तमान दृष्टिकोण भी इसी दिशा की ओर जाता दिखाई देता है। 29 दिसम्बर 2025 को अदालत ने स्वतंत्र विशेषज्ञ राय की आवश्यकता बताई और 26 फरवरी 2026 तथा 25 मई 2026 की आगे की प्रक्रिया में बहु-विषयक उच्चाधिकार प्राप्त समिति की व्यवस्था की। 25 मई 2026 के आदेश के अनुसार समिति को 31 अगस्त 2026 तक अपनी व्यापक रिपोर्ट प्रस्तुत करनी है और मामला 7 सितम्बर 2026 को सूचीबद्ध किया गया है।

इससे यह स्पष्ट है कि अरावली की अंतिम वैज्ञानिक-कानूनी पहचान का प्रश्न अभी विशेषज्ञ अध्ययन और न्यायिक विचार-विमर्श के दौर में है। इसलिए वर्तमान समय में यह कहना जल्दबाजी होगी कि 100 मीटर की परिभाषा ही अरावली की अंतिम और स्थायी परिभाषा बन चुकी है।

अरावली की असली पहचान शायद इसी समझ में छिपी है कि **पहाड़ केवल उसकी चोटी नहीं होता।** उसकी ढलान भी पहाड़ का हिस्सा है, उसकी मिट्टी भी महत्वपूर्ण है, उसकी घाटी भी महत्वपूर्ण है, उसके नीचे का **जलभृत (Aquifer)** भी महत्वपूर्ण है, उससे जुड़े जंगल भी महत्वपूर्ण हैं और उससे होकर गुजरने वाला **वन्यजीव गलियारा (Corridor)** भी महत्वपूर्ण है। यदि इन सबको अलग-अलग कर दिया

जाए तो अरावली का केवल भौगोलिक आकार बचेगा, उसका पारिस्थितिक अर्थ नहीं।

इसलिए भविष्य की अरावली परिभाषा के लिए सबसे उचित वैज्ञानिक दृष्टिकोण वह होगा जिसमें तीन स्तरों को साथ रखा जाए। पहला, **भूवैज्ञानिक पहचान**—यह भू-भाग वास्तव में अरावली भूवैज्ञानिक संरचना का हिस्सा है या नहीं। दूसरा, **पारिस्थितिक कार्यात्मकता**—यह भू-भाग पानी, जैव-विविधता, मिट्टी और जलवायु के लिए क्या भूमिका निभाता है। तीसरा, **भूदृश्यीय निरंतरता**—क्या यह क्षेत्र दूसरे पहाड़ों, जंगलों, जलग्रहण क्षेत्रों और वन्यजीव प्राकृतिक आवासों से जुड़ा हुआ है।

यदि इन तीनों को साथ रखा जाता है तो अरावली की पहचान अधिक वैज्ञानिक और अधिक सुरक्षित होगी। इसके विपरीत यदि केवल ऊंचाई या केवल दूरी को अंतिम मानदंड बना दिया गया, तो संभव है कि कुछ महत्वपूर्ण पारिस्थितिक क्षेत्र कानूनी संरक्षण से बाहर हो जाएं।

यही कारण है कि अरावली के मामले में सुप्रीम कोर्ट की सबसे महत्वपूर्ण सीख यह है कि **कानूनी परिभाषा प्रकृति की वास्तविकता से बड़ी नहीं हो सकती।** कानून को प्रकृति को समझकर अपनी सीमा तय करनी होगी। विशेषज्ञ समिति का काम भी यही है—नक्शे पर रेखा खींचना नहीं, बल्कि यह वैज्ञानिक रूप से पता लगाना कि उस रेखा के भीतर और बाहर रहने से अरावली के पारिस्थितिकी तंत्र पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

अंततः अरावली की असली पहचान उस प्रश्न से तय होगी जिसका उत्तर आने वाली विशेषज्ञ रिपोर्ट और न्यायिक प्रक्रिया को देना है—क्या हम अरावली को केवल 100 मीटर ऊंची पहाड़ियों के समूह के रूप में देखेंगे, या एक प्राचीन, जुड़ी हुई और जीवनदायी पारिस्थितिक प्रणाली के रूप में?

सुप्रीम कोर्ट की हाल की कार्यवाही से कम-से-कम इतना संकेत स्पष्ट है कि इस प्रश्न का उत्तर केवल राजस्व नक्शे, खनन अभिलेखों या एक अकेली ऊंचाई की संख्या से नहीं दिया जा सकता। इसके लिए भू-विज्ञान, जल-विज्ञान, जैव-विविधता, मृदा-विज्ञान, सुदूर संवेदन, GIS मानचित्रण और स्थानीय समुदायों के अनुभव—सभी को साथ लेकर चलना होगा। अदालत द्वारा गठित उच्चाधिकार प्राप्त समिति को इसी व्यापक और बहु-विषयक दृष्टिकोण से अरावली की परिभाषा और उसके संभावित प्रभावों की जांच करनी है।

इसलिए अरावली की असली पहचान को एक वाक्य में कहा जाए तो वह यह है—अरावली केवल पहाड़ नहीं, बल्कि पहाड़ों, जल, मिट्टी, जंगल, जीव-जंतुओं और

मानव जीवन से जुड़ा हुआ एक संपूर्ण प्राकृतिक तंत्र है। और यदि कानून को वास्तव में अरावली की रक्षा करनी है, तो उसे इस पूरे तंत्र की रक्षा करनी होगी—सिर्फ उसकी सबसे ऊंची चोटियों की नहीं।

4.
जनता की नजर में अरावली — पहाड़, जंगल या जीवन और आजीविका की सुरक्षा-कवच?

अरावली को यदि केवल नक्शे पर खींची गई पहाड़ियों की एक लंबी रेखा के रूप में देखा जाए तो उसकी वास्तविक कहानी अधूरी रह जाएगी। सरकारी दस्तावेजों, वैज्ञानिक अध्ययनों और सुप्रीम कोर्ट की कार्यवाही में अरावली को एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्राकृतिक तंत्र के रूप में देखा गया है, लेकिन जमीन पर रहने वाले लोगों के लिए इसका अर्थ और भी सीधा है। किसी के लिए अरावली गांव के पास खड़ा वह पहाड़ है जहां से पत्थर और खनिज मिलते हैं, किसी के लिए वह जंगल है जहां पशुओं के लिए चारा और परिवार के लिए ईंधन मिलता है, किसी किसान के लिए वह बारिश के पानी और भूजल का आधार है, किसी शहरवासी के लिए धूल और गर्मी से बचाने वाली हरित ढाल है और किसी वन्यजीव प्रेमी के लिए वह जंगलों तथा वन्यजीवों का आखिरी सुरक्षित रास्ता है। इसलिए जनता की नजर में अरावली को केवल “पहाड़” कहना उसके सामाजिक और आर्थिक महत्व को बहुत छोटा कर देना होगा। वास्तव में अरावली को समझने का सबसे सही तरीका यही है कि इसे **जीवन, पर्यावरण और आजीविका की सुरक्षा-कवच** के रूप में देखा जाए।

अरावली का महत्व आज इसलिए भी बढ़ गया है क्योंकि इसके भविष्य को लेकर देश में एक बड़ा कानूनी और सामाजिक विमर्श चल रहा है। 20 नवम्बर 2025 के सुप्रीम कोर्ट के फैसले में अरावली को उत्तर-पश्चिम भारत की पारिस्थितिकी के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण बताया गया। अदालत ने इसके मरुस्थलीकरण रोकने, भूजल पुनर्भरण और जैव-विविधता संरक्षण में योगदान पर जोर दिया। केंद्र सरकार की दिसंबर 2025 की जानकारी में भी अरावली को भारत की सबसे पुरानी भू-वैज्ञानिक संरचनाओं में से एक बताते हुए कहा गया कि यह दिल्ली से हरियाणा, राजस्थान होते हुए गुजरात तक फैली है और पारिस्थितिक स्थिरता, जैव-विविधता तथा भूजल पुनर्भरण के लिए महत्वपूर्ण है।

लेकिन जनता के लिए पर्यावरणीय महत्व कोई किताब का विषय नहीं है। इसका असर रोजमर्रा की जिंदगी में दिखाई देता है। जहां पहाड़ और जंगल सुरक्षित रहते हैं, वहां वर्षा का पानी जमीन में जाने की संभावना बढ़ती है, मिट्टी का कटाव कम होता है, वनस्पति बनी रहती है और पशुपालन तथा खेती को प्राकृतिक आधार

मिलता है। जहां पहाड़ काटे जाते हैं, वहां केवल एक चट्टान नहीं हटती; उसके साथ पानी का रास्ता, मिट्टी की पकड़, वनस्पति और स्थानीय पारिस्थितिकी भी प्रभावित हो सकती है। यही कारण है कि अरावली की रक्षा को केवल वन विभाग या पर्यावरण मंत्रालय की जिम्मेदारी मानना पर्याप्त नहीं है। इसका सीधा संबंध उन लोगों से है जिनका जीवन इस प्राकृतिक क्षेत्र पर निर्भर है।

चित्र 4-1: अरावली –पहाड, जंगल, जीवन, पर्यावरण और आजीविका की सुरक्षा-कवच

अरावली क्षेत्र में रहने वाले ग्रामीण समुदायों के लिए जंगल का अर्थ केवल पेड़ नहीं है। जंगल से चारा मिलता है, पशुओं के लिए चराई का क्षेत्र मिलता है, कुछ स्थानों पर फल, औषधीय पौधे, लकड़ी और अन्य वन-उत्पाद मिलते हैं। केंद्र सरकार के अरावली ग्रीन वॉल से जुड़े आधिकारिक दस्तावेज में भी अरावली से ईंधन की लकड़ी, चारा, फल और वाणिज्यिक उत्पाद मिलने तथा क्षेत्र की कृषि और पशुपालन अर्थव्यवस्था में इसके योगदान का उल्लेख किया गया है। दस्तावेज में यह भी बताया गया है कि अरावली क्षेत्र बड़ी पशुधन आबादी को सहारा देता है और कृषि तथा दुग्ध उत्पादन से जुड़ा है।

इसलिए जब कोई कहता है कि “अरावली को बचाना है”, तो ग्रामीण व्यक्ति के लिए इसका अर्थ हो सकता है—“मेरे पशुओं के लिए चारा बचाना है”, “मेरे गांव का पानी बचाना है”, “मेरी जमीन की मिट्टी बचानी है” या “मेरे खेत के आसपास का प्राकृतिक

संतुलन बचाना है।" पर्यावरण संरक्षण और ग्रामीण आजीविका यहां दो अलग-अलग मुद्दे नहीं हैं। दोनों एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं।

अरावली का दूसरा बड़ा सामाजिक महत्व पानी है। राजस्थान, हरियाणा और दिल्ली के अनेक हिस्सों में भूजल पहले से ही अत्यंत महत्वपूर्ण संसाधन है। वर्षा कम या अनियमित होने वाले क्षेत्रों में भूजल केवल पीने के पानी का स्रोत नहीं है बल्कि खेती, पशुपालन और घरेलू अर्थव्यवस्था का आधार भी है। अरावली की चट्टानी संरचनाओं, ढलानों और जलग्रहण क्षेत्रों में वर्षा का पानी अलग-अलग रास्तों से जमीन में पहुंचता है। इसी कारण सुप्रीम कोर्ट और पर्यावरणीय विशेषज्ञों ने अरावली को भूजल पुनर्भरण क्षेत्र के रूप में महत्वपूर्ण माना है। दिल्ली वन विभाग भी अरावली से जुड़े भट्टी क्षेत्र को भूजल पुनर्भरण सुधारने की क्षमता वाला क्षेत्र बताता है।

दिल्ली का उदाहरण विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। दिल्ली के दक्षिणी हिस्से में स्थित **अरावली रिज (Ridge)** केवल पेड़ों और पहाड़ियों का समूह नहीं है। दिल्ली वन विभाग इसे राजधानी के लिए "हरित फेफड़े (Green Lung)" और कार्बन अवशोषक (Carbon Sink) के रूप में देखता है। विभाग के अनुसार, यह क्षेत्र भूजल पुनर्भरण को बेहतर करने की क्षमता रखता है और रेगिस्तानी आँधियों तथा उड़ती रेत के विरुद्ध सुरक्षा-पट्टी (Shelterbelt) की भूमिका निभा सकता है।

इसका सीधा अर्थ है कि अरावली का संरक्षण दिल्ली जैसे बड़े शहर के लोगों के लिए भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना राजस्थान के किसी गांव के लिए। शहर में रहने वाला व्यक्ति शायद कभी यह न सोचता हो कि उसके घर के आसपास उपलब्ध हवा, तापमान, धूल और भूजल की स्थिति का संबंध सैकड़ों किलोमीटर दूर किसी प्राकृतिक पहाड़ी तंत्र से भी हो सकता है। लेकिन अरावली का पारिस्थितिक नेटवर्क यही संबंध बनाता है।

गुरुग्राम और फरीदाबाद का उदाहरण भी इसी बात को समझाता है। हरियाणा वन्यजीव विभाग के अनुसार दक्षिणी हरियाणा की अरावली पहाड़ियों में शुष्क पर्णपाती और झाड़ीदार वन, अर्द्ध-शुष्क पहाड़ी पारिस्थितिकी तंत्र तथा अन्य प्राकृतिक आवास पाए जाते हैं। गुरुग्राम और फरीदाबाद के आसपास अरावली के जंगलों में तेंदुआ, सियार, धारीदार लकड़बग्घा, जंगली बिल्ली और नीलगाय जैसे स्तनधारी भी पाए जाते हैं। खास बात यह है कि इनमें से कई क्षेत्र औपचारिक संरक्षित क्षेत्र नहीं होने के बावजूद वन्यजीवों के लिए महत्वपूर्ण प्राकृतिक आवास हैं।

इससे अरावली की एक और पहचान सामने आती है—यह केवल जंगल नहीं बल्कि **वन्यजीवों का घर और प्राकृतिक** गलियारा भी है। जब जंगल के बीच सड़कें, बड़े निर्माण, खनन क्षेत्र और अन्य मानव गतिविधियां बढ़ती हैं तो वन्यजीवों के आवागमन

के रास्ते टूट सकते हैं। इससे मानव-वन्यजीव संघर्ष बढ़ने की संभावना भी रहती है। इसलिए अरावली का संरक्षण केवल पेड़ बचाने की नीति नहीं है; इसमें वन्यजीव प्राकृतिक आवास और पारिस्थितिक संपर्कता को बचाना भी शामिल है।

लेकिन अरावली के बारे में जनता की राय पूरी तरह एक जैसी नहीं है। यही इस विषय का सबसे कठिन पक्ष है। जिस पहाड़ी को पर्यावरणविद् संरक्षित प्राकृतिक क्षेत्र मानते हैं, उसी पहाड़ी के आसपास रहने वाले किसी व्यक्ति के लिए वहां रोजगार का स्रोत भी हो सकता है। खनन ने कई क्षेत्रों में स्थानीय अर्थव्यवस्था को रोजगार दिया है। पत्थर काटने, परिवहन, निर्माण सामग्री, मशीनरी और इससे जुड़ी गतिविधियों से लोगों की आय जुड़ी रही है। इसलिए यदि किसी क्षेत्र में खनन पर अचानक रोक लगती है तो वहां रहने वाले मजदूर और छोटे व्यवसायी यह सवाल पूछ सकते हैं कि उनके परिवार का रोजगार कैसे चलेगा।

यह सवाल गलत नहीं है। पर्यावरण संरक्षण की नीति यदि स्थानीय आजीविका की वास्तविकता को नजरअंदाज करती है तो वह सामाजिक रूप से कमजोर हो सकती है। दूसरी ओर, यदि केवल रोजगार के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों का अनियंत्रित दोहन होने दिया जाए तो लंबे समय में वही स्थानीय समाज पानी, जमीन और स्वास्थ्य से जुड़ी बड़ी समस्याओं का सामना कर सकता है। इसलिए अरावली का सबसे कठिन प्रश्न यही है कि **पर्यावरण संरक्षण और आजीविका के बीच संतुलन कैसे बनाया जाए।**

सुप्रीम कोर्ट की हाल की प्रक्रिया में यही संतुलन महत्वपूर्ण दिखाई देता है। अदालत ने 2026 में गठित हाई-पावर्ड समिति को केवल सरकारी अधिकारियों या पर्यावरण विशेषज्ञों तक सीमित नहीं रखा। 25 मई 2026 के आदेश में अदालत ने स्पष्ट किया कि हितधारकों में राज्य सरकारें, पर्यावरणविद्, संरक्षण विशेषज्ञ, गैर-सरकारी संगठन (NGOs), खनन पट्टाधारक, परियोजना प्रस्तावक, ग्रामीण, किसान, खदान श्रमिक और स्थानीय समुदाय शामिल हैं। इसका अर्थ है कि अरावली के भविष्य पर निर्णय लेते समय उन लोगों की आवाज भी सुनी जानी चाहिए जिनकी रोजी-रोटी इस क्षेत्र से जुड़ी है।

यह न्यायिक दृष्टिकोण बहुत महत्वपूर्ण है। यदि किसी गांव के लोगों से यह कहा जाए कि “यह क्षेत्र पर्यावरण के लिए महत्वपूर्ण है, इसलिए यहां आपकी आर्थिक गतिविधि बंद होगी”, तो अगला सवाल स्वाभाविक है—“हमारी आजीविका का विकल्प क्या होगा?” संरक्षण का सफल मॉडल वही होगा जिसमें स्थानीय समुदायों को समस्या का हिस्सा नहीं बल्कि समाधान का भाग बनाया जाए।

वास्तव में हाल के घटनाक्रम से यह संकेत भी मिल रहा है। अगस्त 2026 में सुप्रीम कोर्ट द्वारा नियुक्त पैनल ने अलवर क्षेत्र में स्थानीय निवासियों और खनन हितधारक की बातें सुनीं। स्थानीय लोगों ने पर्यावरणीय नुकसान और अवैध खनन पर चिंता व्यक्त की, जबकि खनन से जुड़े लोगों ने ऐसी व्यवस्था की मांग की जिसमें पर्यावरण की रक्षा करते हुए टिकाऊ आर्थिक गतिविधि की संभावना बनी रहे।

इस प्रकार जनता के स्तर पर अरावली की बहस दो बिल्कुल विपरीत खेमों की लड़ाई नहीं है। वास्तविक स्थिति इससे अधिक जटिल है। गांव का किसान भी पहाड़ बचाना चाहता है क्योंकि उसे पानी चाहिए। पशुपालक जंगल बचाना चाहता है क्योंकि उसे चारा चाहिए। पर्यावरणविद् जंगल बचाना चाहता है क्योंकि जैव-विविधता महत्वपूर्ण है। शहर का निवासी अरावली बचाना चाहता है क्योंकि उसे स्वच्छ हवा और कम गर्मी चाहिए। वहीं खनन मजदूर रोजगार चाहता है क्योंकि उसके परिवार का जीवन उस आय पर निर्भर है। इन सभी जरूरतों को एक साथ समझे बिना अरावली की नीति अधूरी रहेगी।

अरावली के संदर्भ में "जीवन और आजीविका की सुरक्षा-कवच" शब्द इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि प्राकृतिक संसाधनों का मूल्य केवल बाजार की कीमत से नहीं मापा जा सकता। एक पेड़ की लकड़ी बेचने पर उसकी कीमत शायद कुछ हजार रुपये हो, लेकिन वही पेड़ मिट्टी रोक सकता है, पक्षियों को आवास दे सकता है, स्थानीय तापमान प्रभावित कर सकता है और कार्बन भंडारण में योगदान कर सकता है। इसी प्रकार पहाड़ से निकले पत्थर की बाजार कीमत तय की जा सकती है, लेकिन उस पहाड़ के भूजल पुनर्भरण, वन्यजीव प्राकृतिक आवास और धूल अवरोधक के रूप में मूल्य को केवल बाजार मूल्य से नहीं मापा जा सकता।

इसे पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएँ कहा जाता है। सरल भाषा में पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएँ वे प्राकृतिक लाभ हैं जो मनुष्य को बिना किसी कारखाने या मशीन के प्रकृति से मिलते हैं। पानी का पुनर्भरण, मिट्टी संरक्षण, हवा की गुणवत्ता, कार्बन भंडारण, जैव-विविधता, चारा, फल और प्राकृतिक बाढ़ नियंत्रण इसके उदाहरण हैं। अरावली इन सेवाओं का एक बड़ा स्रोत है।

दिल्ली के **अरावली जैव-विविधता पार्क** का उदाहरण इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। DDA के अनुसार 277 हेक्टेयर के इस क्षेत्र में पहले खनन गड्ढे, खनन से निकले मलबे के ढेर, मुर्रम, खदानें और गुफाओं जैसी क्षतिग्रस्त भू-आकृतियाँ थीं। इसे प्राकृतिक संरक्षण क्षेत्र के रूप में विकसित करने का उद्देश्य जलग्रहण क्षेत्र के कार्य के माध्यम से पानी का अंतःस्रवण बढ़ाना, भूजल स्तर में सुधार करना तथा स्थानीय पक्षियों, वन्यजीवों और वनस्पतियों के लिए प्राकृतिक आवास उपलब्ध कराना है।

इस उदाहरण से एक महत्वपूर्ण बात सामने आती है—नष्ट हुई अरावली को पुनर्जीवित किया जा सकता है, लेकिन इसमें समय और संसाधन दोनों लगते हैं। इसलिए संरक्षण का सबसे सस्ता और प्रभावी रास्ता अक्सर यह होता है कि जो प्राकृतिक क्षेत्र अभी स्वस्थ हैं, उन्हें पहले से ही बचाया जाए।

अरावली का एक बड़ा खतरा अनियंत्रित खनन रहा है। खनन अपने आप में हर जगह गलत गतिविधि नहीं है। देश को निर्माण, सड़क, घर और उद्योग के लिए खनिजों की आवश्यकता होती है। समस्या तब उत्पन्न होती है जब खनन पारिस्थितिक वहन क्षमता से अधिक हो जाए, भूजल तक पहुंच जाए, पहाड़ियों की प्राकृतिक संरचना नष्ट करे या अवैध रूप से संवेदनशील क्षेत्र में की जाए। CEC की सिफारिशों में संरक्षित क्षेत्र, वन्यजीव गलियारे, भूजल पुनर्भरण क्षेत्र और अन्य पारिस्थितिकly संवेदनशील क्षेत्रों में खनन पर कठोर नियंत्रण की आवश्यकता बताई गई थी।

इसलिए जनता की नजर में सबसे उचित रास्ता शायद "हर खनन बंद" और "हर जगह खनन जारी" के बीच कहीं है। संवेदनशील क्षेत्रों में पूर्ण संरक्षण, कुछ क्षेत्रों में सीमित और वैज्ञानिक रूप से नियंत्रित गतिविधि तथा पुराने खनन क्षेत्रों में **पुनर्स्थापन**—यह अधिक संतुलित मॉडल हो सकता है। इसके लिए सबसे पहले वैज्ञानिक मानचित्रण और **पारिस्थितिक वहन क्षमता का आकलन** आवश्यक है।

अरावली के संदर्भ में एक और महत्वपूर्ण प्रश्न है—क्या स्थानीय लोगों को केवल संरक्षण के नाम पर उनके पारंपरिक संसाधनों से दूर कर देना चाहिए? इसका उत्तर भी सरल नहीं है। यदि किसी गांव की अर्थव्यवस्था जंगल से चारा, पशुपालन और छोटे वन-उत्पादों पर निर्भर है, तो संरक्षण नीति को उस आर्थिक संबंध को समझना होगा। स्थानीय समुदायों को वन संरक्षण में भागीदार बनाकर, सतत दोहन, चरागाह प्रबंधन, पारिस्थितिकी पर्यटन, पुनर्स्थापन कार्य और स्थानीय रोजगार के अवसर पैदा किए जा सकते हैं।

हरियाणा में अरावली ग्रीन वॉल से जुड़े हाल के कार्यक्रमों में "वन मित्रों" जैसे स्थानीय रोजगार और भागीदारी के उपायों का उल्लेख किया गया है। राज्य सरकार ने गांवों के युवाओं को संरक्षण गतिविधियों से जोड़ने की बात कही है। यह उदाहरण दिखाता है कि पर्यावरण संरक्षण और स्थानीय रोजगार को एक-दूसरे के विरोध में रखना जरूरी नहीं है।

यदि इसी तरह के मॉडल राजस्थान, हरियाणा, गुजरात और दिल्ली के अरावली क्षेत्रों में विकसित किए जाएं तो स्थानीय लोगों को संरक्षण से आर्थिक लाभ भी मिल सकता

है। उदाहरण के लिए, क्षतिग्रस्त खदानों के पुनर्स्थापन में स्थानीय श्रमिकों को रोजगार दिया जा सकता है। स्थानीय प्रजातियों के वृक्षारोपण, जल संचयन संरचनाओं, मृदा संरक्षण, पौधशाला विकास, जैव-विविधता निगरानी और प्रकृति पर्यटन में स्थानीय युवाओं को प्रशिक्षित किया जा सकता है। इससे संरक्षण एक "बाहरी आदेश" न रहकर स्थानीय अर्थव्यवस्था का हिस्सा बन सकता है।

यहां महिलाओं की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। ग्रामीण क्षेत्रों में जल, ईंधन, पशुचारा और घरेलू संसाधनों की कमी का प्रभाव महिलाओं के दैनिक जीवन पर अधिक पड़ सकता है। यदि जलस्रोत दूर हो जाएं या चारा उपलब्ध न हो, तो परिवार की महिलाओं और बच्चों पर अतिरिक्त श्रम का बोझ पड़ सकता है। इसलिए अरावली संरक्षण की सामाजिक लागत और लाभ का आकलन करते समय लैंगिक आयाम को भी ध्यान में रखना चाहिए।

अरावली का संरक्षण किसानों के लिए भी महत्वपूर्ण है। पहाड़ी क्षेत्र की वनस्पति और मिट्टी वर्षा के पानी को नियंत्रित करने में मदद करती है। यदि अचानक बारिश का पानी तेजी से बह जाए तो मृदा अपरदन बढ़ सकता है। दूसरी ओर, यदि जलग्रहण क्षेत्र में वनस्पति बनी रहे और पानी का कुछ हिस्सा जमीन में जाए तो निचले प्रवाह क्षेत्रों में पानी की उपलब्धता को लाभ हो सकता है। इसलिए पहाड़ी और खेत को अलग-अलग इकाइयों की तरह देखने के बजाय पूरे जलग्रहण क्षेत्र को समझना आवश्यक है।

राजस्थान सरकार के आधिकारिक विवरण में भी अरावली की भौगोलिक भूमिका स्पष्ट दिखाई देती है। राज्य में यह पर्वतमाला दक्षिण-पश्चिम में गुरु शिखर से उत्तर-पूर्व में खेतड़ी तक फैली है और राज्य के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों को प्रभावित करती है। अरावली के पश्चिमी भाग से लूनी और उसकी सहायक नदियों का जल-निकास तंत्र जुड़ा है।

इससे यह भी स्पष्ट होता है कि अरावली केवल "एक पहाड़" नहीं है। यह जल-विभाजक, जल-निकासी तंत्र और भूदृश्य संरचना का हिस्सा है। किसी पहाड़ी को काटना इसलिए केवल स्थानीय भू-दृश्य बदलना नहीं हो सकता; उसका प्रभाव आसपास के जल-निकासी तंत्र और जलग्रहण क्षेत्र पर भी पड़ सकता है।

जनता के लिए अरावली की एक और भूमिका सांस्कृतिक है। इन पहाड़ियों के आसपास सदियों से गांव बसे हैं। अनेक स्थानों पर पहाड़ियों, जंगलों और जलस्रोतों का स्थानीय संस्कृति और परंपराओं से संबंध रहा है। स्थानीय लोगों के लिए कोई पहाड़ी केवल भूवैज्ञानिक संरचना नहीं होती; वह उनके गांव के इतिहास, धार्मिक

विश्वास, चराई के रास्ते, जलस्रोत या सामुदायिक स्मृति का हिस्सा हो सकती है। इसलिए अरावली की रक्षा में सांस्कृतिक भूदृश्य को भी महत्व दिया जाना चाहिए।

इसीलिए पर्यावरण संरक्षण को केवल "जंगल बनाम विकास" के रूप में प्रस्तुत करना सही नहीं है। वास्तविक विकास वह होगा जिसमें स्थानीय लोगों का जीवन बेहतर हो और प्राकृतिक संसाधन भी सुरक्षित रहें। यदि किसी क्षेत्र में खनन से कुछ वर्षों के लिए रोजगार मिलता है लेकिन बाद में भूजल समाप्त हो जाता है, खेती प्रभावित होती है और गांव छोड़कर पलायन करना पड़ता है, तो उसे लंबे समय का सतत विकास नहीं कहा जा सकता। इसके विपरीत यदि पुनर्स्थापन, पर्यटन, कृषि, पशुधन, वन उत्पाद और स्थानीय रोजगार के मिश्रित मॉडल विकसित किए जाएं तो प्रकृति और अर्थव्यवस्था दोनों साथ चल सकते हैं।

यही सोच सुप्रीम कोर्ट की विशेषज्ञ समिति के सामने भी एक महत्वपूर्ण चुनौती है। समिति को केवल यह तय नहीं करना है कि कौन-सी पहाड़ी 100 मीटर है और कौन-सी नहीं। उसे यह भी देखना है कि प्रस्तावित परिभाषा का पारिस्थितिक और सामाजिक-आर्थिक प्रभाव क्या होगा। 25 मई 2026 के सुप्रीम कोर्ट आदेश में समिति को भूविज्ञान, मृदा, जैव-विविधता, वनस्पति एवं जीव-जंतु, खनिज संपदा, प्राकृतिक संसाधन और सटीक भू-मानचित्रण के साथ-साथ विभिन्न हितधारकों से परामर्श करने का निर्देश दिया गया है।

यह आदेश जनता की भूमिका को नई मजबूती देता है। अब स्थानीय लोगों की आवाज केवल राजनीतिक बहस का हिस्सा नहीं है; वह विशेषज्ञ समीक्षा की प्रक्रिया का हिस्सा बन सकती है। हाल की पैनल बैठकों में अलवर के स्थानीय लोगों और खनन हितधारक से राय लेना इसी दिशा का संकेत है।

लेकिन जनता की भागीदारी का अर्थ केवल बैठक में लोगों को बुलाना नहीं होना चाहिए। स्थानीय लोगों को यह जानकारी भी मिलनी चाहिए कि प्रस्तावित सीमा उनके गांव, जंगल, खेत, जलस्रोत और रोजगार पर क्या प्रभाव डालेगी। GIS मानचित्रों को सार्वजनिक करना, गांव-स्तर पर नक्शों की जानकारी देना, स्थानीय भाषाओं में सूचना उपलब्ध कराना और आपत्तियों का रिकॉर्ड रखना पारदर्शी प्रक्रिया का हिस्सा होना चाहिए।

अरावली की रक्षा के लिए सबसे जरूरी बात यह है कि स्थानीय समुदाय को "अवैध अतिक्रमणकारी" या "पर्यावरण विरोधी" मानकर न देखा जाए। उसी तरह खनन से जुड़े हर व्यक्ति को भी पर्यावरण का दुश्मन मानना सही नहीं होगा। असली लक्ष्य यह होना चाहिए कि जो गतिविधियां प्रकृति को स्थायी नुकसान पहुंचाती हैं, उन्हें

रोका जाए और जो आर्थिक गतिविधियां पर्यावरणीय सीमाओं के भीतर संभव हैं, उन्हें वैज्ञानिक नियमों के साथ संचालित किया जाए।

इस दृष्टि से अरावली को एक **साझी प्राकृतिक पूंजी** माना जा सकता है। पहाड़ किसी एक व्यक्ति के नहीं हैं, लेकिन उनके लाभ समाज के हर वर्ग को मिलते हैं। किसान को पानी, पशुपालक को चारा, शहर को हवा, वन्यजीव को प्राकृतिक आवास और उद्योग को कुछ खनिज संसाधन—इन सभी का आधार एक ही भूदृश्य हो सकता है। इसलिए अरावली का भविष्य किसी एक वर्ग के हित से तय नहीं किया जा सकता।

आज जनता के सामने सबसे बड़ा प्रश्न यही है कि हम अरावली से क्या चाहते हैं। क्या हम उसे केवल पत्थर और खनिजों का स्रोत मानेंगे? क्या हम उसे केवल जंगल समझेंगे? या हम यह स्वीकार करेंगे कि वह प्राकृतिक आधारभूत संरचना है—ऐसा संरचना जिसे बनाने में मनुष्य ने एक रुपये भी खर्च नहीं किया, लेकिन जिसके बिना पानी, हवा, मिट्टी और जैव-विविधता की व्यवस्था कमजोर हो सकती है?

सड़क, बांध, बिजलीघर और शहर बनाने में सरकार और समाज करोड़ों-अरबों रुपये खर्च करते हैं। लेकिन अरावली जैसी प्राकृतिक संरचना हजारों-लाखों वर्षों में बनी है। इसे नष्ट करने में कुछ दशक भी नहीं लग सकते, जबकि इसे वापस उसी स्थिति में लाना लगभग असंभव हो सकता है। यही कारण है कि प्राकृतिक आधारभूत संरचना की कीमत को विकास की गणना में शामिल करना आवश्यक है।

इसका अर्थ यह नहीं कि अरावली क्षेत्र में रहने वाले लोगों को विकास से वंचित कर दिया जाए। बल्कि इसके विपरीत, अरावली संरक्षण को ग्रामीण और स्थानीय विकास की नई दिशा बनाना चाहिए। यदि गांवों में जल-संरक्षण, पशुपालन, कृषि-वानिकी, स्थानीय प्रजातियों का वृक्षारोपण, पारिस्थितिकी पर्यटन, हस्तशिल्प, वन उपज और पुनर्स्थापन कार्य को बढ़ावा मिले तो संरक्षण स्वयं रोजगार का माध्यम बन सकता है।

अरावली ग्रीन वॉल जैसी पहल का उद्देश्य भी केवल पेड़ लगाना नहीं होना चाहिए। इसका व्यापक उद्देश्य क्षरित भूमि का पुनर्स्थापन, मरुस्थलीकरण को रोकना, जैव-विविधता बढ़ाना और स्थानीय अर्थव्यवस्था को मजबूत करना होना चाहिए। केंद्र के विस्तृत कार्ययोजना में अरावली को मरुस्थलीकरण के विरुद्ध प्राकृतिक अवरोध, जल पुनर्भरण प्रणाली और जैव-विविधता के प्राकृतिक आवास के रूप में देखा गया है तथा इसके वनों, घासभूमियों और आर्द्रभूमियों की पारिस्थितिक भूमिका पर जोर दिया गया है।

इस पूरी बहस से एक बहुत सरल लेकिन महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलता है। **अरावली को बचाना और जनता की आजीविका बचाना दो अलग-अलग काम नहीं हैं। सही नीति में दोनों एक ही काम के दो हिस्से होने चाहिए।**

यदि अरावली सुरक्षित रहेगी तो पानी और प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा मजबूत होगी। यदि पानी और संसाधन सुरक्षित होंगे तो खेती और पशुपालन को लाभ मिलेगा। यदि जंगल और प्राकृतिक आवास सुरक्षित होंगे तो जैव-विविधता और स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएँ बचेंगी। यदि पुनर्स्थापन और संरक्षण में स्थानीय लोगों को रोजगार मिलेगा तो पर्यावरण संरक्षण स्वयं ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत कर सकता है।

लेकिन इसके लिए नीति में एक बात सबसे जरूरी है—**स्थानीय जनता की आवाज।** जिस व्यक्ति ने पीढ़ियों से उस पहाड़ी को देखा है, वह उसके प्राकृतिक रास्तों और जलस्रोतों को जानता है। जिस किसान ने वर्षों से वहां खेती की है, वह बारिश और मिट्टी के व्यवहार को समझता है। जिस पशुपालक ने जंगल में अपने पशु चराए हैं, वह स्थानीय वनस्पति और जलस्रोतों की जानकारी रखता है। जिस खनिक ने वहां वर्षों काम किया है, वह जमीन की आर्थिक वास्तविकता जानता है। वैज्ञानिक-इन अनुभवों को उपग्रह आँकड़ों, भूवैज्ञानिक मानचित्रण और पारिस्थितिक आकलन के साथ जोड़ सकते हैं। तभी अरावली की वास्तविक तस्वीर सामने आएगी।

इसलिए जनता की नजर में अरावली केवल पहाड़ नहीं है। वह पानी है, जंगल है, चारा है, खेती है, पशुपालन है, रोजगार है, हवा है, वन्यजीव है और आने वाली पीढ़ियों की सुरक्षा है। कुछ लोगों के लिए वह आजीविका का स्रोत है और कुछ के लिए जीवन की प्राकृतिक ढाल। इन दोनों बातों में विरोध नहीं होना चाहिए।

आज जब सर्वोच्च न्यायालय विशेषज्ञ समिति के माध्यम से अरावली की वैज्ञानिक, भौगोलिक और कानूनी पहचान पर पुनर्विचार कर रहा है, तब सबसे बड़ी उम्मीद यही है कि अंतिम व्यवस्था केवल नक्शे पर एक सीमा निर्धारित करने तक सीमित न रहे। आवश्यकता ऐसी समग्र व्यवस्था की है, जिसमें अरावली की भूवैज्ञानिक पहचान (geological identity), पारिस्थितिकीय निरंतरता (पारिस्थितिक connectivity), भूजल, जैव-विविधता, मिट्टी, वन, जलस्रोत तथा स्थानीय आजीविकाओं को एक-दूसरे से जुड़े हुए विषयों के रूप में देखा जाए।

इस संदर्भ में विशेषज्ञों की वैज्ञानिक राय के साथ-साथ ग्रामीणों, किसानों, पशुपालकों, मजदूरों और खनन से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े लोगों की वास्तविक समस्याओं और अनुभवों को भी गंभीरता से सुना जाना आवश्यक है।

अरावली संरक्षण की दिशा में **जल-पुरुष डॉ. राजेन्द्र सिंह के तरुण भारत संघ** जैसे संगठनों के दीर्घकालीन प्रयास भी यह स्पष्ट करते हैं कि पर्वत, जंगल, जल और स्थानीय समुदायों का संरक्षण एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। जल-संरक्षण, पारंपरिक जलस्रोतों के पुनर्जीवन और सामुदायिक सहभागिता के माध्यम से उन्होंने यह संदेश मजबूत किया है कि प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा तभी स्थायी हो सकती है, जब स्थानीय समाज स्वयं उसका भागीदार बने।

हाल की न्यायिक प्रक्रिया इसी व्यापक और समावेशी परामर्श की दिशा में आगे बढ़ती दिखाई देती है। इसलिए अपेक्षा है कि अंतिम निर्णय विज्ञान, न्याय, पर्यावरणीय संतुलन और जनहित के बीच ऐसा समन्वय स्थापित करेगा, जो अरावली को केवल पहाड़ियों की श्रृंखला नहीं, बल्कि जल, जंगल, मिट्टी, जैव-विविधता और मानव जीवन की जीवनरेखा के रूप में सुरक्षित रख सके।

अंततः अरावली का भविष्य केवल अदालत के आदेश से तय नहीं होगा। न्यायालय का आदेश संरक्षण की दिशा दे सकता है, सरकार आवश्यक नीतियाँ और नियम बना सकती है तथा विशेषज्ञ वैज्ञानिक आधार प्रदान कर सकते हैं, लेकिन जमीन पर अरावली का वास्तविक संरक्षण तभी सफल होगा, जब स्थानीय समाज उसे अपना समझेगा और उसकी रक्षा में सक्रिय भागीदारी निभाएगा। संरक्षण की किसी भी नीति की स्थायी सफलता केवल कानूनी प्रावधानों पर निर्भर नहीं करती, बल्कि इस बात पर भी निर्भर करती है कि स्थानीय लोगों को उसमें अपना भविष्य और हित कितना दिखाई देता है।

यदि जनता को यह महसूस होगा कि अरावली को बचाने का अर्थ केवल पहाड़ों और जंगलों को बचाना नहीं, बल्कि अपने जल, मिट्टी, खेती, पशुधन, स्वास्थ्य, रोजगार और आने वाली पीढ़ियों के जीवन को सुरक्षित करना है, तो संरक्षण का प्रयास और अधिक मजबूत होगा। लेकिन यदि संरक्षण का अर्थ केवल प्रतिबंध, निर्माण पर रोक, विस्थापन अथवा बेरोजगारी के रूप में दिखाई देगा, तो स्वाभाविक रूप से असंतोष और संघर्ष की परिस्थितियाँ पैदा हो सकती हैं। इसलिए अरावली संरक्षण के साथ स्थानीय समुदायों की आजीविका, सामाजिक सुरक्षा और विकास की आवश्यकताओं का संतुलन बनाना भी अत्यंत आवश्यक है।

इसी कारण अरावली की सबसे मजबूत सुरक्षा-कवच कोई अकेला कानून, न्यायिक आदेश या सरकारी अधिसूचना नहीं हो सकता। उसका वास्तविक और दीर्घकालीन

सुरक्षा-कवच होगा—**वैज्ञानिक नीति, मजबूत कानून, पारदर्शी प्रशासन, प्रभावी निगरानी, उत्तरदायी विकास और स्थानीय जनता की सक्रिय भागीदारी।** वैज्ञानिक नीति यह सुनिश्चित करे कि अरावली की भूवैज्ञानिक संरचना, जलग्रहण क्षेत्र, भूजल, वन, जैव-विविधता और पारिस्थितिकीय निरंतरता को ध्यान में रखकर विकास किया जाए। मजबूत कानून अवैध खनन और अंधाधुंध निर्माण को नियंत्रित करे, जबकि पारदर्शी प्रशासन उसके प्रभावी क्रियान्वयन को सुनिश्चित करे।

इस दिशा में **तरुण भारत संघ** के जल-संरक्षण एवं सामुदायिक सहभागिता के प्रयासों ने यह सिद्ध किया है कि जल, जंगल, भूमि और स्थानीय समाज को अलग-अलग करके नहीं देखा जा सकता। और शायद अरावली को समझने का सबसे सरल और सार्थक तरीका यही है कि उसे केवल यह पूछकर न देखा जाए कि **"यह पहाड़ कितना ऊँचा है?"** बल्कि यह पूछा जाए कि **"इस पहाड़ से कितने लोगों का जीवन जुड़ा है?"** यह प्रश्न अरावली के वास्तविक महत्व को समझने की कुंजी है। क्योंकि अरावली केवल चट्टानों और पहाड़ियों की एक श्रृंखला नहीं है; यह जलस्रोतों, भूजल, मिट्टी, जंगलों, वन्यजीवों, कृषि, पशुपालन और मानव बस्तियों के जीवन-तंत्र से गहराई से जुड़ी हुई है। जब यह सवाल संरक्षण की नीति और विकास की योजनाओं के केंद्र में आएगा, तब अरावली केवल एक पर्वत श्रृंखला नहीं रहेगी। वह भारत के लिए जल, पर्यावरण, जीवन और आजीविका की सुरक्षा-कवच के रूप में दिखाई देगी। तब अरावली को बचाना केवल पर्यावरण संरक्षण का विषय नहीं होगा, बल्कि करोड़ों लोगों के वर्तमान और भविष्य को सुरक्षित करने का राष्ट्रीय दायित्व बन जाएगा।

इसलिए अरावली के संरक्षण का अंतिम लक्ष्य केवल पहाड़ों को बचाना नहीं, बल्कि **पहाड़ों से जुड़े जीवन को बचाना** होना चाहिए। जब न्यायिक व्यवस्था, वैज्ञानिक समुदाय, सरकार और स्थानीय समाज एक साझा दृष्टिकोण के साथ आगे बढ़ेंगे, तभी अरावली अपनी प्राकृतिक शक्ति, पारिस्थितिकीय संतुलन और सामाजिक महत्त्व को लंबे समय तक बनाए रख सकेगी। यही दृष्टिकोण अरावली को भारत की **जीवन और आजीविका की वास्तविक सुरक्षा-कवच** के रूप में सुरक्षित रखने का सबसे मजबूत आधार बनेगा।

5.

अरावली का क्षरण और जलवायु संकट — क्या बदलता पर्यावरण भारत को एल-नीनो के प्रभावों के प्रति अधिक संवेदनशील बना सकता है?

अरावली को लेकर जब हम पर्यावरण संकट की बात करते हैं, तो सामान्यतः हमारी नजर पहाड़ों की कटाई, अवैध खनन, जंगलों के कम होने, भूजल के गिरते स्तर और बढ़ते निर्माण पर जाती है। लेकिन इन सबके पीछे एक बहुत बड़ा सवाल छिपा हुआ है—क्या अरावली के कमजोर होने से भारत जलवायु की उन घटनाओं के सामने अधिक संवेदनशील हो सकता है जिन्हें हम सीधे नियंत्रित नहीं कर सकते? इनमें एल-नीनो सबसे महत्वपूर्ण घटनाओं में से एक है। एल-नीनो प्रशांत महासागर के भूमध्यरेखीय हिस्से में समुद्र की सतह के असामान्य रूप से गर्म होने और उससे जुड़ी वायुमंडलीय परिस्थितियों की घटना है। इसका असर दुनिया के अलग-अलग हिस्सों के मौसम पर पड़ सकता है और भारत में इसका संबंध दक्षिण-पश्चिम मानसून की वर्षा से भी देखा गया है। भारतीय मौसम विभाग के ऐतिहासिक आंकड़े बताते हैं कि कई एल-नीनो वर्षों में भारत में मानसूनी वर्षा सामान्य से कम रही, हालांकि हर एल-नीनो वर्ष में सूखा पड़े, ऐसा कोई निश्चित नियम नहीं है।

इस अध्याय का सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न इसलिए यह नहीं है कि “क्या अरावली के कटने से एल-नीनो पैदा होता है?” इसका उत्तर स्पष्ट रूप से **नहीं** है। एल-नीनो की उत्पत्ति प्रशांत महासागर और उससे जुड़े महासागरीय-वायुमंडलीय तंत्र में होती है। अरावली को काटने या उसके जंगलों को कम करने से एल-नीनो पैदा नहीं होता और न ही इससे प्रशांत महासागर का तापमान सीधे नियंत्रित होता है। असली प्रश्न इससे अधिक सूक्ष्म है—**यदि एल-नीनो जैसी वैश्विक जलवायु घटना भारत में मानसून, गर्मी या सूखे का दबाव बढ़ाती है, तो क्या पहले से क्षतिग्रस्त अरावली भारत की जमीन, पानी, वनस्पति और स्थानीय समाज को उस दबाव को सहने में कम सक्षम बना सकती है?** वैज्ञानिक दृष्टि से इस प्रश्न का उत्तर “हां, संभावित रूप से” है। इसका अर्थ यह है कि अरावली एल-नीनो को मजबूत नहीं करती, लेकिन अरावली का क्षरण उन स्थानीय परिस्थितियों को कमजोर कर सकता

है जिनके कारण किसी सूखे, गर्मी या कम वर्षा की घटना का प्रभाव अधिक गंभीर महसूस हो सकता है।

इसे एक सरल उदाहरण से समझा जा सकता है। यदि किसी व्यक्ति के पास पर्याप्त पानी, भोजन और मजबूत शरीर है तो वह कुछ दिनों की गर्मी या बीमारी को अपेक्षाकृत आसानी से सह सकता है। लेकिन यदि वही व्यक्ति पहले से कमजोर है, उसके पास पानी कम है और भोजन की कमी है, तो वही बाहरी संकट उसके लिए कहीं अधिक गंभीर हो सकता है। जलवायु के संदर्भ में अरावली की प्राकृतिक व्यवस्था एक तरह की पारिस्थितिक लचीलापन प्रदान करती है। जंगल, मिट्टी, जलग्रहण क्षेत्र, वनस्पति, पहाड़ियां और भूजल पुनर्भरण क्षेत्र मिलकर ऐसी प्राकृतिक क्षमता बनाते हैं जो गर्मी, सूखे, तेज बारिश और भूमि क्षरण जैसे दबावों के सामने क्षेत्र को संभालने में मदद कर सकती है। इसलिए अरावली का क्षरण जलवायु परिवर्तन का कारण नहीं है, लेकिन यह जलवायु संकट के प्रति संवेदनशीलता और जोखिम को बढ़ा सकता है।

भारत का मानसून पहले से ही एक जटिल प्रणाली है। एल-नीनो और भारतीय मानसून के बीच संबंध महत्वपूर्ण है, लेकिन यह एक सीधा और हर साल समान रूप से काम करने वाला संबंध नहीं है। भारतीय मौसम विभाग के आंकड़ों में एल-नीनो वर्षों के दौरान मानसूनी वर्षा के कई उदाहरण दिए गए हैं। 1965 में अखिल भारतीय दक्षिण-पश्चिम मानसून वर्षा में लगभग 18.6 प्रतिशत की कमी रही, 1972 में लगभग 22.3 प्रतिशत की कमी, 1982 में 11.4 प्रतिशत की कमी, 1987 में 14.3 प्रतिशत की कमी, 2002 में 20.9 प्रतिशत की कमी और 2015 में 12.7 प्रतिशत की कमी दर्ज की गई। लेकिन यही आंकड़े यह भी दिखाते हैं कि हर एल-नीनो वर्ष में वर्षा कम नहीं हुई। 1994 में एल-नीनो के बावजूद मानसून वर्षा सामान्य से लगभग 13.9 प्रतिशत अधिक रही और 1953 तथा 1963 जैसे वर्षों में भी कमी के बजाय सामान्य या अधिक वर्षा देखी गई।

यही तथ्य बहुत महत्वपूर्ण है। इससे पता चलता है कि भारत का मानसून केवल एल-नीनो से तय नहीं होता। हिंद महासागर की परिस्थितियां, इंडियन ओसियन डाईपोल (IOD) , मानसून की आंतरिक परिवर्तनशीलता, हिमालय और यूरेशिया की बर्फ, वायुमंडलीय परिसंचरण और अन्य महासागरीय परिस्थितियां भी भूमिका निभाती हैं। भारतीय मौसम विभाग के शोध में भी यह पाया गया है कि अलग-अलग एल-नीनो घटनाओं के दौरान भारतीय मानसून का व्यवहार एक जैसा नहीं रहा।

इसलिए यदि हम अरावली और एल-नीनो के संबंध को वैज्ञानिक रूप से समझना चाहते हैं, तो हमें किसी एक सीधी कारण-श्रृंखला से बचना होगा। यह कहना गलत

होगा कि "अरावली कटेगी तो एल-नीनो का असर बढ़ जाएगा।" अधिक सही कथन यह होगा कि "यदि किसी एल-नीनो या अन्य जलवायु घटना के कारण भारत में वर्षा कम होती है या गर्मी बढ़ती है, तो पहले से क्षतिग्रस्त प्राकृतिक जल और वनस्पति प्रणालियां उस संकट के प्रभाव को बढ़ा सकती हैं।" यही अंतर वैज्ञानिक रूप से बहुत महत्वपूर्ण है।

अरावली की सबसे बड़ी जलवायु-संबंधी भूमिका उसके भूमि और जल तंत्र में दिखाई देती है। पहाड़ियां वर्षा के पानी के प्रवाह को प्रभावित करती हैं। उनकी ढलानों पर मौजूद मिट्टी और वनस्पति पानी के बहाव को धीमा कर सकती है और जमीन में पानी के प्रवेश की प्रक्रिया (infiltration) को बढ़ावा दे सकती है। जहां वनस्पति नष्ट हो जाती है और पहाड़ी काट दी जाती है, वहां बारिश का पानी अधिक तेजी से बह सकता है, मिट्टी का कटाव बढ़ सकता है और स्थानीय जलग्रहण व्यवस्था कमजोर हो सकती है। इसका अर्थ यह नहीं कि हर पहाड़ी अपने नीचे के हर जलभृत को समान मात्रा में पुनर्भरण करती है, बल्कि यह है कि अरावली भूदृश्य के कई हिस्सों में सतही पानी और भूजल के बीच संबंध प्राकृतिक भू-आकृति और चट्टानी संरचनाओं से जुड़ा हुआ है।

यही कारण है कि अरावली से जुड़े न्यायिक विमर्श में भूजल पुनर्भरण को लगातार महत्व मिला है। सुप्रीम कोर्ट के 20 नवम्बर 2025 के फैसले में अरावली के पर्यावरणीय महत्व को रेखांकित करते हुए जल और पारिस्थितिक सुरक्षा पर जोर दिया गया था। केंद्रीय अधिकारप्राप्त समिति की सिफारिशों में भी भूजल जलभृत और पुनर्भरण क्षेत्र को विशेष रूप से संवेदनशील क्षेत्रों के रूप में देखा गया तथा ऐसी खनन से बचने की जरूरत बताई गई जो भूजल स्तर तक पहुंच जाए। इससे यह स्पष्ट है कि अरावली की रक्षा केवल जंगलों की रक्षा नहीं बल्कि जल सुरक्षा से भी जुड़ी हुई है।

जलवायु संकट के दौर में इसका महत्व और बढ़ जाता है। यदि किसी वर्ष मानसून कमजोर हो, तो उपलब्ध वर्षा का अधिक से अधिक हिस्सा जमीन और जलग्रहण तंत्र में सुरक्षित रखना महत्वपूर्ण हो जाता है। यदि प्राकृतिक पुनर्भरण क्षेत्र स्वस्थ हैं तो वर्षा के बाद कुछ पानी जमीन में जा सकता है और बाद के महीनों में भूजल के रूप में उपयोगी रह सकता है। यदि वही क्षेत्र पक्के निर्माण, खनन गड्ढे, अत्यधिक खुदाई या मिट्टी के क्षरण से प्रभावित हो जाएं, तो पानी का प्राकृतिक चक्र बदल सकता है। ऐसी स्थिति में कम वर्षा का असर और अधिक महसूस हो सकता है।

यहां **अरावली और एल-नीनो** के बीच संबंध को समझने का सबसे अच्छा तरीका जोखिम बढ़ाने वाला कारक की अवधारणा है। एल-नीनो एक बाहरी जलवायु दबाव हो सकता है। कमजोर मानसून दूसरा दबाव / तनाव हो सकता है। अत्यधिक गर्मी

तीसरा तनाव हो सकती है। लेकिन यदि किसी क्षेत्र की प्राकृतिक जल-व्यवस्था, मिट्टी और वनस्पति पहले से खराब हो चुकी है, तो ये दबाव / तनाव मिलकर अधिक गंभीर परिणाम दे सकते हैं। यानी अरावली एल-नीनो की शक्ति नहीं बढ़ाती, बल्कि उसके संभावित प्रभावों से निपटने की स्थानीय क्षमता को प्रभावित कर सकती है।

भारत के लिए यह विषय इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि देश का बड़ा हिस्सा मानसून पर निर्भर है। मानसून की वर्षा कृषि, जलाशयों, भूजल पुनर्भरण, पशुपालन और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण है। जब मानसून सामान्य से कम होता है तो केवल खेतों में पानी की कमी नहीं होती। पशुओं के लिए चारा प्रभावित होता है, ग्रामीण जलस्रोतों पर दबाव बढ़ता है, बिजली उत्पादन और शहरी जल आपूर्ति पर असर पड़ सकता है और खाद्य कीमतों पर भी प्रभाव पड़ सकता है। यदि किसी क्षेत्र में प्राकृतिक जल संरक्षण की क्षमता पहले से कमजोर हो, तो ऐसी स्थिति में स्थानीय समाज अधिक जल्दी संकट में पहुंच सकता है।

चित्र 5.1: अरावली कि पहाड़ियां व एल-नीनो का पाभाव

अरावली क्षेत्र में यह समस्या विशेष रूप से गंभीर हो सकती है क्योंकि यह क्षेत्र राजस्थान, हरियाणा, दिल्ली और गुजरात के अलग-अलग जलवायु क्षेत्रों से जुड़ा हुआ है। राजस्थान के कई हिस्से अर्ध-शुष्क परिस्थितियों का सामना करते हैं, जबकि दिल्ली-एनसीआर में तेजी से बढ़ता शहरीकरण प्राकृतिक भूमि पर दबाव

डाल रहा है। इसलिए यहां जलवायु परिवर्तन और भूमि-उपयोग में परिवर्तन का संयुक्त प्रभाव महत्वपूर्ण हो जाता है।

अरावली का दूसरा बड़ा जलवायु-संबंधी महत्व **मरुस्थलीकरण को रोकने वाली प्राकृतिक बाधा** के रूप में है। सुप्रीम कोर्ट ने अरावली को थार मरुस्थल के पूर्व की ओर विस्तार के खिलाफ एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक अवरोध के रूप में देखा है। इसका अर्थ यह नहीं कि अरावली अकेले पूरे थार मरुस्थल को रोकती है। मरुस्थलीकरण एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें जलवायु, वर्षा, भूमि उपयोग, वनस्पति, मिट्टी, चराई, कृषि और मानव गतिविधियां सभी भूमिका निभाती हैं। लेकिन अरावली का वनस्पति और भू-आकृतिक तंत्र इस भूदृश्य में प्राकृतिक अवरोध और पारिस्थितिक सुरक्षा क्षेत्र की भूमिका निभाता है।

यदि अरावली की वनस्पति कम होती है, मिट्टी खुली रहती है और भूमि का क्षरण बढ़ता है, तो हवा द्वारा मिट्टी और धूल के परिवहन की संभावना बढ़ सकती है। इससे आसपास के क्षेत्रों में धूल, भूमि क्षरण और मरुस्थलीकरण का दबाव बढ़ सकता है। भारत सरकार का **सतत भूमि एवं पारिस्थितिकी तंत्र प्रबंधन (SLEM)** कार्यक्रम भी भूमि क्षरण को रोकने, क्षरित भूमि और वनस्पति आवरण को पुनर्स्थापित करने, कार्बन अवशोषण बढ़ाने तथा जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने के लिए पारिस्थितिकी तंत्र की क्षमता को बनाए रखने पर जोर देता है।

यहां जलवायु परिवर्तन का दूसरा पहलू सामने आता है। बदलती जलवायु केवल औसत तापमान बढ़ने की कहानी नहीं है। इसके साथ अत्यधिक गर्मी, भारी वर्षा की घटनाएं, सूखे की अवधि और वर्षा के समय तथा वितरण में बदलाव जैसे खतरे भी महत्वपूर्ण हो सकते हैं। किसी क्षेत्र की लचीलापन इस बात पर निर्भर करती है कि वह इन बदलावों को कितना सह सकता है। स्वस्थ पारिस्थितिकी तंत्र में मिट्टी और वनस्पति पानी को संभालने, गर्मी कम करने और जैव-विविधता बनाए रखने में सहायता कर सकते हैं। क्षरित पारिस्थितिकी तंत्र में यही क्षमता कमजोर हो सकती है।

अरावली के संदर्भ में गर्मी (heat**)** विशेष महत्व रखती है। दिल्ली-एनसीआर और राजस्थान-हरियाणा के आसपास गर्मी की घटनाएं पहले से ही मानव स्वास्थ्य और पानी की मांग पर दबाव डालती हैं। पेड़ों और वनस्पति की कमी से स्थानीय स्तर पर छाया और वाष्पोत्सर्जन-वाष्पीकरण जैसी प्राकृतिक शीतलन / ठंडक प्रदान करने की प्रक्रियाएं कम हो सकती हैं। इसके विपरीत हरित क्षेत्र शहरों और आसपास के क्षेत्रों में स्थानीय सूक्ष्म जलवायु को प्रभावित कर सकते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि अरावली अकेले दिल्ली या राजस्थान का तापमान निर्धारित करती है, बल्कि यह कि

बड़े हरित भूदृश्य स्थानीय गर्मी और सतही तापमान के खिलाफ एक प्राकृतिक सुरक्षा क्षेत्र का काम कर सकते हैं।

इसी कारण अरावली का संरक्षण जलवायु अनुकूलन की नीति का हिस्सा होना चाहिए। भारत का **ग्रीन इंडिया मिशन** भी वन और वृक्ष आवरण की रक्षा, पुनर्स्थापन और वृद्धि को जलवायु परिवर्तन से निपटने के अनुकूलन और शमन, दोनों उपायों से जोड़ता है। मिशन जैव-विविधता, जल, जैवभार, आर्द्रभूमियों, प्राकृतिक आवासों और कार्बन भंडारण जैसी पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं को मजबूत करने तथा स्थानीय समुदायों की भूमिका पर जोर देता है।

यह बात अरावली पर सीधे लागू की जा सकती है। यदि अरावली को केवल "खनन नियंत्रण" के विषय के रूप में देखा गया तो हम उसके जलवायु अनुकूलन की क्षमता को नजरअंदाज कर देंगे। यदि इसे भूदृश्य पुनर्स्थापन के रूप में देखा जाए तो कई फायदे एक साथ मिल सकते हैं। उदाहरण के लिए, क्षरित खनन क्षेत्र का पुनर्स्थापन किया जाए, स्थानीय वनस्पतियों को वापस लाया जाए, जलग्रहण संरचनाओं को मजबूत किया जाए, छोटी आर्द्रभूमियों और मौसमी जलधाराओं को पुनर्जीवित किया जाए तथा वन्यजीव गलियारों को जोड़ा जाए तो **जल सुरक्षा, जैव-विविधता और जलवायु लचीलापन**—तीनों में सुधार हो सकता है।

यहाँ एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक सावधानी भी आवश्यक है। पेड़ लगाना हमेशा अरावली पुनर्स्थापन का पर्याय नहीं है। यदि किसी अर्ध-शुष्क प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र में केवल तेजी से बढ़ने वाले बाहरी पेड़ लगा दिए जाएँ तो उससे स्थानीय जैव-विविधता और जल संतुलन पर हमेशा सकारात्मक असर नहीं पड़ता। अरावली के पुनर्स्थापन में स्थानीय और देशज वनस्पतियों, प्राकृतिक घासभूमियों, झाड़ियों और स्थानीय पारिस्थितिक परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए। जंगल की परिभाषा केवल पेड़ों की संख्या से नहीं होती। एक स्वस्थ अर्ध-शुष्क पारिस्थितिकी तंत्र में घास, झाड़ियाँ, छोटे पेड़, मिट्टी, कीट, पक्षी और अन्य जीव भी महत्वपूर्ण होते हैं।

इसी तरह हर बारिश को "अच्छी बारिश" मान लेना भी वैज्ञानिक रूप से सही नहीं है। यदि किसी क्षेत्र की मिट्टी और जलग्रहण संरचना खराब हो चुकी है तो बहुत कम समय में अत्यधिक वर्षा होने पर पानी तेजी से बह सकता है और बाढ़ तथा अपरदन का खतरा बढ़ सकता है। दूसरी ओर लंबे समय तक बारिश न होने पर सूखे का दबाव बढ़ सकता है। इसलिए जलवायु परिवर्तन के दौर में केवल वर्षा की कुल मात्रा नहीं, बल्कि वर्षा का **समय, तीव्रता और वितरण** भी महत्वपूर्ण है।

यहीं अरावली का जलग्रहण क्षेत्र का कार्य महत्वपूर्ण हो जाता है। स्वस्थ भूदृश्य वर्षा के जल को कुछ हद तक रोकने, धीरे-धीरे बहाने और जमीन में जाने का अवसर दे सकता है। इसका अर्थ यह नहीं कि अरावली हर बाढ़ को रोक सकती है या हर सूखे को खत्म कर सकती है। लेकिन प्राकृतिक तंत्र अक्सर जोखिम को कम करते हैं। इसी को जलवायु लचीलापन कहा जाता है।

अरावली का क्षरण इस लचीलेपन को कमजोर करने के कई रास्ते खोल सकता है। पहला रास्ता है वनस्पति का ह्रास। दूसरा है मृदा अपरदन। तीसरा है खनन और उत्खनन से भूदृश्य में परिवर्तन। चौथा है भूजल पुनर्भरण क्षेत्रों पर निर्माण। पाँचवाँ है शहरीकरण के कारण प्राकृतिक जल-निकासी तंत्र का टूटना। छठा **है** खंडित प्राकृतिक आवास। ये सभी प्रक्रियाएँ अलग-अलग दिखाई देती हैं, लेकिन जलवायु संकट के समय इनके प्रभाव एक-दूसरे से जुड़ सकते हैं।

मान लीजिए किसी वर्ष **एल-नीनो** के कारण मानसून कमजोर रहता है। इसका मतलब यह नहीं कि पूरे भारत में समान मात्रा में बारिश कम होगी। लेकिन जहाँ कम वर्षा होती है, वहाँ पहले से कमजोर भूजल तंत्र अधिक दबाव में आ सकता है। यदि अरावली क्षेत्र में पुनर्भरण क्षेत्र सुरक्षित हैं तो कुछ हद तक पानी की उपलब्धता बनी रह सकती है। यदि वे नष्ट हैं तो भूजल पर निर्भरता और अधिक बढ़ सकती है। इसके बाद किसान अधिक गहराई तक बोरवेल कर सकते हैं, जिससे भूजल दबाव और बढ़ सकता है। इस प्रकार एक जलवायु घटना स्थानीय संसाधन संकट में बदल सकती है।

इसी तरह यदि एल-नीनो के साथ गर्मी बढ़ती है और वर्षा का वितरण असमान होता है, तो पशुपालकों के लिए चारे की समस्या पैदा हो सकती है। जंगल और घासभूमियाँ पहले से क्षरित हों तो प्राकृतिक चारा उपलब्धता और कम हो सकती है। इससे पशुओं की उत्पादकता प्रभावित हो सकती है और ग्रामीण परिवारों की आय पर दबाव पड़ सकता है। इसलिए अरावली संरक्षण को केवल वन्यजीव या पेड़-पौधों का विषय समझना पर्याप्त नहीं है; यह जलवायु-संवेदनशील आजीविकाओं का विषय भी है।

यहाँ जलवायु न्याय का प्रश्न भी आता है। जलवायु संकट का कारण वैश्विक स्तर पर कई देशों और क्षेत्रों के ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन से जुड़ा है, लेकिन उसके प्रभाव समान रूप से नहीं पड़ते। जिन लोगों के पास मजबूत आधारभूत संरचना, पाइप से जलापूर्ति, वातानुकूलन, बीमा और आर्थिक सुरक्षा है, वे अत्यधिक मौसम की घटनाओं का सामना अपेक्षाकृत बेहतर कर सकते हैं। ग्रामीण गरीब, छोटे किसान, पशुपालक और दैनिक मजदूर अधिक संवेदनशील हो सकते हैं। यदि प्राकृतिक सुरक्षा-कवच भी कमजोर कर दिया जाए तो उनकी असुरक्षा और बढ़ सकती है।

इसलिए अरावली की रक्षा को **जलवायु न्याय** के नजरिये से भी देखा जाना चाहिए। एक पहाड़ी को बचाना केवल वन्यजीव को बचाना नहीं है; यह उन समुदायों की अनुकूलन क्षमता को बचाना भी है जो प्राकृतिक संसाधनों पर अधिक निर्भर हैं।

सुप्रीम कोर्ट की हाल की अरावली प्रक्रिया में यही व्यापक सोच महत्वपूर्ण दिखाई देती है। 25 मई 2026 के आदेश में अदालत द्वारा गठित उच्चाधिकार प्राप्त समिति को भूविज्ञान, मृदा विशेषताएँ, जैव-विविधता, वनस्पति एवं जीव-जंतु, खनिज संपदा, प्राकृतिक संसाधन और सटीक भू-मानचित्रण जैसे पहलुओं का अध्ययन करने को कहा गया। साथ ही विभिन्न हितधारकों की राय लेने की आवश्यकता भी बताई गई। यह दृष्टिकोण इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि जलवायु संकट को केवल एक विभाग के नजरिये से नहीं समझा जा सकता। भूगोल, वन, जल, कृषि, खनन और स्थानीय अर्थव्यवस्था सभी एक-दूसरे से जुड़े हैं।

20 नवम्बर 2025 के सुप्रीम कोर्ट के निर्णय में भी अरावली के संरक्षण को मरुस्थलीकरण, जैव-विविधता और पारिस्थितिक स्थिरता के व्यापक संदर्भ में देखा गया था। अदालत की चिंता केवल यह नहीं थी कि कौन-सी पहाड़ी कानूनी रूप से अरावली है; चिंता यह भी थी कि अरावली के पारिस्थितिक कार्यों को कैसे सुरक्षित रखा जाए। यही बात जलवायु लचीलेपन पर भी लागू होती है।

इसलिए अरावली को लेकर भविष्य की नीति में तीन स्तरों पर काम होना चाहिए। पहला, **संरक्षण**—जो प्राकृतिक क्षेत्र अभी बचे हैं, उन्हें अनावश्यक खनन और निर्माण से बचाना। दूसरा, **पुनर्स्थापन**—जो क्षेत्र पहले से क्षतिग्रस्त हो चुके हैं, उन्हें वैज्ञानिक तरीके से पुनर्स्थापित करना। तीसरा, **अनुकूलन**—जलवायु परिवर्तन के कारण आने वाले गर्मी, सूखे और अत्यधिक वर्षा जैसे जोखिमों के लिए स्थानीय जल और भूमि व्यवस्था को मजबूत बनाना।

अरावली ग्रीन वॉल जैसी पहल इसी व्यापक सोच से जुड़ी हो सकती है, लेकिन इसकी सफलता केवल लगाए गए पौधों की संख्या से नहीं मापी जानी चाहिए। असली सफलता यह होगी कि क्या क्षरित भूदृश्य वापस पारिस्थितिक कार्य प्राप्त कर रहा है? क्या भूजल पुनर्भरण बेहतर हो रहा है? क्या स्थानीय जैव-विविधता लौट रही है? क्या मृदा अपरदन कम हो रहा है? क्या स्थानीय लोगों को आजीविका मिल रही है? क्या वन्यजीव गलियारे बेहतर हो रहे हैं? और क्या जलवायु की चरम स्थितियों के दौरान स्थानीय समाज अधिक लचीला हो रहा है?

यहाँ निगरानी अत्यंत आवश्यक है। उपग्रह आँकड़ों, सुदूर संवेदन, भूजल अवलोकनों, वनस्पति सूचकांकों, मृदा नमी, जैव-विविधता सर्वेक्षणों और स्थानीय

वर्षा अभिलेखों को जोड़कर अरावली के स्वास्थ्य संकेतक तैयार किए जा सकते हैं। यदि हर कुछ वर्षों में यह देखा जाए कि पुनर्स्थापन से वास्तव में क्या परिवर्तन हुआ है, तभी नीतियाँ साक्ष्य-आधारित बनेंगी।

एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि एल-नीनो के प्रभाव को लेकर अतिशयोक्ति से बचना होगा। भारत में मानसून की भविष्यवाणी केवल यह देखकर नहीं की जा सकती कि प्रशांत महासागर में एल-नीनो है या नहीं। भारत मौसम विज्ञान विभाग के ऐतिहासिक आँकड़े स्वयं दिखाते हैं कि कुछ एल-नीनो वर्षों में भारत में मानसून सामान्य या सामान्य से अधिक भी रहा है। इसलिए अरावली के संरक्षण का उद्देश्य “एल-नीनो को रोकना” नहीं हो सकता। उद्देश्य होना चाहिए— किसी भी जलवायु झटके के सामने भारत के स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र और समाज को अधिक मजबूत बनाना।

यही इस पूरे प्रश्न का सबसे महत्वपूर्ण उत्तर है। यदि अरावली स्वस्थ रहती है तो वह एल-नीनो को खत्म नहीं करेगी, मानसून को नियंत्रित नहीं करेगी और जलवायु परिवर्तन को रोक नहीं देगी। लेकिन वह जल, मिट्टी, वनस्पति, जैव-विविधता और स्थानीय आजीविका की ऐसी प्राकृतिक आधार-व्यवस्था को मजबूत रख सकती है जो सूखे और गर्मी के दबाव को सहने में मदद करे। दूसरी ओर यदि अरावली लगातार कटती रही, प्राकृतिक जल-निकासी तंत्र और पुनर्भरण क्षेत्र नष्ट होते रहे, जंगल और घासभूमियाँ टूटते रहे और भूमि क्षरण बढ़ता रहा, तो वही जलवायु घटनाएं अधिक गंभीर सामाजिक और आर्थिक संकट में बदल सकती हैं।

इसलिए अरावली की लड़ाई वास्तव में केवल पहाड़ बचाने की लड़ाई नहीं है। यह जलवायु जोखिम कम करने की लड़ाई भी है। यह भविष्य के पानी की लड़ाई है। यह मिट्टी बचाने की लड़ाई है। यह किसानों और पशुपालकों की अनुकूलन क्षमता की लड़ाई है। यह शहरों को गर्मी और धूल से बचाने की लड़ाई है। यह जैव-विविधता और वन्यजीव गलियारे की लड़ाई है। और अंततः यह आने वाली पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक सुरक्षा-कवच बचाने की लड़ाई है।

आज जब भारत जलवायु परिवर्तन के बढ़ते प्रभावों से जूझ रहा है, तब हमें यह समझना होगा कि जलवायु नीति केवल कार्बन उत्सर्जन कम करने तक सीमित नहीं हो सकती। भारत को अनुकूलन की भी उतनी ही जरूरत है। जंगलों, आर्द्रभूमियों, नदियों, घासभूमियों और पहाड़ों जैसे प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र अनुकूलन अवसंरचना का काम कर सकते हैं। ग्रीन इंडिया मिशन भी पारिस्थितिकी तंत्र पुनर्स्थापन, जल सेवाओं, जैव-विविधता और कार्बन भंडारण को जलवायु अनुकूलन और शमन, दोनों से जोड़ता है।

अरावली इस दृष्टि से भारत की प्राकृतिक संपत्ति है। इसे केवल खनन राजस्व, रियल एस्टेट मूल्य या जमीन की कीमत से नहीं मापा जा सकता। इसका मूल्य इस बात में है कि यह कितने वर्षों तक पानी रोक सकती है, कितनी मिट्टी बचा सकती है, कितने जीवों को प्राकृतिक आवास दे सकती है, कितनी गर्मी और धूल के खिलाफ प्राकृतिक सुरक्षा क्षेत्र बना सकती है और कितने लोगों की आजीविका को सहारा दे सकती है।

इसलिए अब अध्याय के मूल प्रश्न पर लौटना आवश्यक है—क्या अरावली का क्षरण भारत को एल-नीनो के प्रभावों के प्रति अधिक संवेदनशील बना सकता है? इस प्रश्न का वैज्ञानिक रूप से सबसे संतुलित और स्पष्ट उत्तर यही है कि अरावली का क्षरण स्वयं एल-नीनो को अधिक शक्तिशाली नहीं बनाता, लेकिन यह उन प्राकृतिक, पारिस्थितिकीय और सामाजिक सुरक्षा-प्रणालियों को कमजोर कर सकता है, जो एल-नीनो से जुड़े संभावित कम वर्षा, लंबे सूखे, अत्यधिक गर्मी, जल-संकट और कृषि पर पड़ने वाले दबाव को सहने में हमारी सहायता करती हैं।

दूसरे शब्दों में, एल-नीनो एक वैश्विक जलवायु घटना के रूप में बाहरी खतरा उत्पन्न करता है, लेकिन उस खतरे से होने वाली क्षति की मात्रा काफी हद तक हमारी स्थानीय प्राकृतिक और सामाजिक प्रणालियों की मजबूती पर निर्भर करती है। यदि किसी क्षेत्र में वन, पर्वतीय पारिस्थितिकी, जलग्रहण क्षेत्र, भूजल पुनर्भरण, प्राकृतिक जलस्रोत और मिट्टी की नमी सुरक्षित हैं, तो कम वर्षा और बढ़ती गर्मी जैसी परिस्थितियों का सामना करने की क्षमता अपेक्षाकृत अधिक हो सकती है। इसके विपरीत, यदि प्राकृतिक सुरक्षा-तंत्र पहले ही कमजोर हो चुके हों, तो समान जलवायु दबाव अधिक गंभीर जल-संकट, कृषि हानि, भूमि क्षरण और आजीविका संबंधी समस्याओं में बदल सकता है।

यही कारण है कि अरावली को केवल एक भौगोलिक पर्वत-श्रृंखला या खनिज संसाधनों वाले क्षेत्र के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है। यह एक व्यापक पारिस्थितिकीय सुरक्षा-तंत्र है, जिसका प्रभाव जल, मिट्टी, वनस्पति, जैव-विविधता, भूजल और स्थानीय जलवायु तक फैला हुआ है। अरावली के वन और प्राकृतिक ढाल वर्षाजल के बहाव को नियंत्रित करने, मिट्टी के कटाव को कम करने और जल के प्राकृतिक संचयन तथा भूजल पुनर्भरण में योगदान करते हैं। इसलिए इसका निरंतर क्षरण उस प्राकृतिक क्षमता को कम कर सकता है, जिसकी आवश्यकता जलवायु परिवर्तन और चरम मौसम की बढ़ती घटनाओं के दौर में और अधिक हो गई है।

इस दृष्टि से एल-नीनो और अरावली के बीच संबंध को **“एल-नीनो की शक्ति”** के बजाय **“एल-नीनो के प्रभावों को सहने की क्षमता”** के संदर्भ में समझना अधिक उचित होगा। अरावली एल-नीनो को नियंत्रित नहीं करती, लेकिन एक स्वस्थ अरावली उन परिस्थितियों को मजबूत कर सकती है, जिनके माध्यम से समाज कम वर्षा, गर्मी और जल-अभाव जैसे बाहरी जलवायु दबावों के सामने अधिक लचीला बन सकता है। यही अंतर जलवायु जोखिम और जलवायु लचीलेपन के बीच महत्वपूर्ण संबंध को स्पष्ट करता है।

इसीलिए अरावली की रक्षा को केवल पर्यावरण संरक्षण की सीमित नीति न मानकर राष्ट्रीय जलवायु लचीलापन रणनीति का महत्वपूर्ण हिस्सा माना जाना चाहिए। जलग्रहण क्षेत्रों की सुरक्षा, वनों का संरक्षण, भूजल पुनर्भरण, वर्षाजल संचयन, पारंपरिक जलस्रोतों का पुनर्जीवन, मिट्टी संरक्षण और स्थानीय समुदायों की भागीदारी जैसी पहलों को अरावली संरक्षण के साथ एकीकृत किया जाना आवश्यक है। इससे न केवल प्राकृतिक पारिस्थितिकी मजबूत होगी, बल्कि सूखा, गर्मी और जल-संकट जैसी संभावित परिस्थितियों के प्रति सामाजिक और आर्थिक संवेदनशीलता भी कम की जा सकेगी।

इस संदर्भ में 2026 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा गठित विशेषज्ञ समिति तथा उससे जुड़ी सार्वजनिक परामर्श प्रक्रिया विशेष रूप से महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करती है। यह प्रक्रिया अरावली की वैज्ञानिक और कानूनी पहचान को व्यापक पर्यावरणीय दृष्टिकोण से समझने तथा उसके संरक्षण के लिए अधिक समग्र आधार तैयार करने का अवसर देती है। जुलाई 2026 में पर्यावरण मंत्रालय द्वारा समिति से संबंधित सार्वजनिक सूचना जारी कर अरावली पहाड़ियों और पर्वतमालाओं के संबंध में सुझाव आमंत्रित किया जाना भी इस व्यापक विचार-विमर्श की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। इससे संकेत मिलता है कि अरावली की परिभाषा, सीमांकन और संरक्षण से जुड़े विषय अभी विशेषज्ञों, वैज्ञानिकों, नीति-निर्माताओं और जनता के व्यापक विचार-विमर्श के दौर में हैं।

आने वाले समय में असली परीक्षा यही होगी कि क्या हम अरावली को केवल एक कानूनी परिभाषा में सीमित करते हैं या उसके पूरे पारिस्थितिक कार्य को बचाते हैं। यदि हम पहाड़ की ऊंचाई गिनेंगे लेकिन उसके नीचे का पानी नहीं देखेंगे, जंगल का क्षेत्र गिनेंगे लेकिन वन्यजीव गलियारे नहीं देखेंगे, बारिश की मात्रा गिनेंगे लेकिन मिट्टी की स्थिति नहीं देखेंगे और खनन से मिलने वाला रोजगार गिनेंगे लेकिन लंबे समय की जल-सुरक्षा की कीमत नहीं देखेंगे, तो तस्वीर अधूरी रहेगी।

अरावली हमें यह सिखाती है कि जलवायु संकट के सामने सबसे मजबूत समाज वही होगा जो अपनी प्राकृतिक प्रणालियों को मजबूत रखे। एल-नीनो जैसी वैश्विक घटना

को भारत नियंत्रित नहीं कर सकता। लेकिन भारत यह तय कर सकता है कि ऐसी घटना आने पर उसकी जमीन कितनी पानी रोक पाएगी, उसके जंगल कितनी जैव-विविधता बचा पाएंगे, उसके जलग्रहण क्षेत्र कितने स्वस्थ होंगे और उसके गाँव तथा शहर कितने लचीले होंगे।

इसलिए अरावली का संरक्षण केवल अतीत को बचाना नहीं है। यह भविष्य के जलवायु संकट के लिए भारत को तैयार करना है।

और शायद यही इस अध्याय का सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष है—

एल-नीनो समुद्र में पैदा होता है, लेकिन उसके प्रभावों की गंभीरता जमीन पर तय होती है। यदि जमीन की प्राकृतिक सुरक्षा-कवच मजबूत है तो समाज झटका सह सकता है; यदि वही सुरक्षा-कवच कमजोर हो चुका है, तो एक ही जलवायु घटना पानी, खेती, रोजगार और जीवन पर कहीं बड़ा असर डाल सकती है। अरावली को बचाना इसलिए एल-नीनो को रोकना नहीं, बल्कि भारत को एल-नीनो और बदलती जलवायु के झटकों के सामने अधिक मजबूत बनाना है।

6.
विकास बनाम पारिस्थितिकी — क्या सरकार ने अरावली पर फैसलों के मानवीय और पर्यावरणीय प्रभाव का पर्याप्त अध्ययन किया?

अरावली को लेकर चल रही कानूनी बहस को यदि केवल “खनन की अनुमति होगी या नहीं होगी” के प्रश्न तक सीमित कर दिया जाए, तो इस पूरे विवाद का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा छूट जाता है। असली प्रश्न इससे कहीं बड़ा है—जब किसी प्राकृतिक पर्वत-तंत्र की कानूनी परिभाषा बदली जाती है, उसके आधार पर भूमि और खनन के नियम तय किए जाते हैं तथा विकास की नई संभावनाएं सामने आती हैं, तब क्या उसके पर्यावरणीय, सामाजिक, आर्थिक और मानवीय प्रभावों का पर्याप्त और स्वतंत्र अध्ययन किया गया है? यही प्रश्न 20 नवम्बर 2025 के सुप्रीम कोर्ट के निर्णय, उसके बाद उठी आपत्तियों और 29 दिसम्बर 2025 को उस निर्णय को रोककर पुनर्विचार की दिशा में बढ़ी न्यायिक प्रक्रिया के केंद्र में आ गया। इसलिए इस अध्याय में यह समझना जरूरी है कि सरकार की ओर से क्या अध्ययन और तर्क प्रस्तुत किए गए थे, उनकी मजबूती क्या थी, आलोचकों की आपत्तियां क्या थीं और बाद में सुप्रीम कोर्ट ने विशेषज्ञ समीक्षा की आवश्यकता क्यों महसूस की।

सबसे पहले एक तथ्य स्पष्ट करना जरूरी है। 20 नवम्बर 2025 को सुप्रीम कोर्ट ने अरावली पहाड़ियों और रेंज की एक समान, ऊंचाई-आधारित परिभाषा को स्वीकार किया था। केंद्र सरकार की समिति ने “स्थानीय राहत” से 100 मीटर या उससे अधिक ऊंचाई वाली भू-आकृति को अरावली हिल के रूप में पहचानने का प्रस्ताव दिया था। इसके अलावा दो ऐसी पहाड़ियों को, जिनकी दूरी 500 मीटर तक हो, अरावली रेंज के रूप में जोड़ने की व्यवस्था की गई थी। महत्वपूर्ण बात यह थी कि 100 मीटर का मानदंड केवल चोटी की ऊंचाई तक सीमित नहीं था; समिति की परिभाषा में सबसे निचली घेरने वाली समोच्च रेखा के भीतर की पूरी भू-आकृति, सहायक ढालें और संबंधित भू-आकृतियाँ भी शामिल थीं। सरकार ने यह भी कहा था कि इसका अर्थ यह नहीं है कि 100 मीटर से कम ऊँचाई वाले हर क्षेत्र में खनन स्वतः खुल जाएगा।

लेकिन यहीं से मूल विवाद शुरू हुआ। पर्यावरणविदों और कई विशेषज्ञों की चिंता यह थी कि किसी जटिल पर्वतीय और पारिस्थितिक तंत्र को केवल ऊंचाई के आधार पर परिभाषित करना क्या पर्याप्त वैज्ञानिक तरीका है? किसी पहाड़ी की पारिस्थितिक उपयोगिता उसकी ऊंचाई से हमेशा निर्धारित नहीं होती। कोई छोटी पहाड़ी या पहाड़ी ढलान किसी जलग्रहण क्षेत्र, भूजल पुनर्भरण, वन्यजीव गलियारे, वनस्पति क्षेत्र या स्थानीय जलवायु के लिए महत्वपूर्ण हो सकती है। इसलिए यदि कानूनी सुरक्षा का आधार केवल एक निश्चित ऊंचाई सीमा बन जाए, तो यह खतरा पैदा हो सकता है कि कुछ पारिस्थितिक विशेषताएँ कानूनी सुरक्षा के दायरे से बाहर हो जाएं। यही चिंता बाद में सुप्रीम कोर्ट की पुनर्विचार प्रक्रिया में भी महत्वपूर्ण बनी।

सरकार की तरफ से इसके विपरीत एक मजबूत तर्क था। लंबे समय से विभिन्न राज्यों में अरावली की पहचान और खनन नियंत्रण के लिए अलग-अलग मानदंड रहे थे। केंद्र द्वारा गठित समिति का उद्देश्य इन अलग-अलग व्यवस्थाओं को एक समान बनाना था। सरकारी विवरण के अनुसार राजस्थान में 2006 से 100 मीटर **स्थानीय भू-आकृति (Local Relief) पर आधारित परिभाषा लागू थी** और समिति ने उसी को अधिक स्पष्ट, पारदर्शी और वैज्ञानिक बनाने का प्रयास किया। समिति में दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान और गुजरात के वन विभागों के अधिकारी तथा भारतीय वन सर्वेक्षण, केंद्रीय अधिकारप्राप्त समिति और भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण के प्रतिनिधि शामिल थे। समिति ने राज्यों से परामर्श भी किया था।

सरकार का यह पक्ष पूरी तरह नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। किसी प्राकृतिक क्षेत्र की सुरक्षा के लिए स्पष्ट सीमा आवश्यक होती है। यदि किसी क्षेत्र की कानूनी सीमा स्पष्ट न हो तो प्रशासन के लिए यह तय करना कठिन हो जाता है कि कौन-सी भूमि संरक्षित है और कौन-सी नहीं। इससे खनन अनुमतियों, पर्यावरणीय स्वीकृतियों, भूमि-उपयोग संबंधी निर्णयों और प्रवर्तन में विवाद पैदा हो सकता है। इस दृष्टि से मानचित्रण और एकरूप परिभाषा की आवश्यकता वास्तविक थी। सरकार की समिति ने भारतीय वन सर्वेक्षण के मानचित्रों पर अरावली की पहाड़ियों और पर्वतमालाओं को चिह्नित करने, कोर/अविच्छिन्न क्षेत्रों को अलग करने और सतत खनन के लिए विस्तृत प्रबंधन योजना तैयार करने जैसी व्यवस्थाओं का सुझाव दिया था।

लेकिन किसी परिभाषा का स्पष्ट होना और उसका पर्याप्त रूप से पारिस्थितिक होना दो अलग बातें हैं। यही इस पूरे विवाद का केंद्रीय प्रश्न है। यदि नक्शा साफ है लेकिन उसमें कुछ महत्वपूर्ण पारिस्थितिक क्षेत्र छूट जाते हैं, तो प्रशासनिक स्पष्टता पर्यावरणीय सुरक्षा की गारंटी नहीं देती। इसलिए किसी भी नई परिभाषा के प्रभाव का अध्ययन केवल "कितनी जमीन अरावली कहलाएगी" तक सीमित नहीं होना

चाहिए था। यह भी देखना आवश्यक था कि नई सीमा के कारण कितने जंगल, कितने जलग्रहण क्षेत्र, कितने वन्यजीव गलियारे, कितने भूजल पुनर्भरण क्षेत्र और कितने ग्रामीण आजीविका क्षेत्र अलग कानूनी स्थिति में आ सकते हैं।

यही कारण है कि 20 नवम्बर के निर्णय के बाद "क्या सरकार ने पर्याप्त प्रभाव आकलन किया?" प्रश्न गंभीर बन गया। सरकार ने अपने पक्ष में कहा कि समिति ने राज्यों के साथ विस्तृत विचार-विमर्श किया, तकनीकी सहायता ली और पारिस्थितिक सुरक्षा उपाय भी प्रस्तावित किए। उसने यह भी स्पष्ट किया कि संरक्षित क्षेत्र, बाघ आरक्षित क्षेत्र, संरक्षित क्षेत्र के आसपास के पारिस्थितिक-संवेदनशील क्षेत्र**,** आर्द्रभूमियाँ और CAMPA के अंतर्गत किए गए वृक्षारोपण जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों को कोर/अविच्छिन्न संरक्षण में शामिल किया गया।

चित्र-6.1: विकास बनाम पारिस्थिकी

सरकार की दृष्टि से इसलिए यह कहना उचित नहीं होगा कि उसने कोई अध्ययन किया ही नहीं। वास्तव में परिभाषा तैयार करने के लिए समिति बनी, राज्यों से बातचीत हुई, तकनीकी सुझाव लिए गए, मानचित्रण की व्यवस्था प्रस्तावित हुई और खनन प्रबंधन योजना का प्रावधान रखा गया। सुप्रीम कोर्ट ने भी 20 नवम्बर 2025 के निर्णय में समिति की सिफारिशों को स्वीकार किया और नई खनन लीज़ पर भूदृश्य-व्यापी सतत खनन प्रबंधन योजना तैयार होने तक अंतरिम रोक लगाई थी। लेकिन प्रश्न यह है कि क्या अध्ययन पर्याप्त रूप से स्वतंत्र, बहु-विषयी और पूर्ण था? यहीं उत्तर अधिक जटिल हो जाता है।

29 दिसम्बर 2025 को सुप्रीम कोर्ट ने अपने 20 नवम्बर के निर्णय को आगे लागू करने से रोकते हुए इस विषय पर स्वतंत्र और विशेषज्ञ समीक्षा की आवश्यकता व्यक्त की। बाद के 25 मई 2026 के सुप्रीम कोर्ट आदेश में स्वयं अदालत ने 29 दिसम्बर 2025 और 26 फरवरी 2026 के आदेशों का उल्लेख करते हुए कहा कि 3 अक्टूबर 2025 की समिति की रिपोर्ट का व्यापक मूल्यांकन करने के लिए विषय-विशेषज्ञों वाली उच्चाधिकार प्राप्त समिति की आवश्यकता है। अदालत ने यह भी कहा कि 20 नवम्बर के निर्णय की दिशा में आगे बढ़ने से पहले निष्पक्ष, तटस्थ और स्वतंत्र विशेषज्ञ राय प्राप्त करना आवश्यक है।

यह घटनाक्रम अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण तथ्य है। इसका अर्थ यह नहीं कि सुप्रीम कोर्ट ने यह घोषित कर दिया कि सरकार का पूरा अध्ययन गलत था। लेकिन यह अवश्य संकेत करता है कि अदालत को लगा कि इस विषय के पारिस्थितिक और वैज्ञानिक पहलुओं पर अधिक स्वतंत्र और व्यापक समीक्षा जरूरी है। बाद में जून 2026 में गठित उच्चाधिकार प्राप्त समिति को यही जिम्मेदारी दी गई कि वह प्रस्तावित परिभाषा के वैज्ञानिक आधार और उसके पर्यावरणीय प्रभावों की जाँच करे। सरकारी समाचार स्रोत के अनुसार, समिति को यह भी देखना था कि प्रस्तावित मानदंडों से पर्यावरण संरक्षण के अंतर्गत आने वाला क्षेत्र गंभीर रूप से कम तो नहीं हो सकता और क्या इससे पारिस्थितिक रूप से संवेदनशील क्षेत्रों में खनन या अन्य गतिविधियों का रास्ता खुल सकता है।

इससे एक महत्वपूर्ण सिद्धांत सामने आता है—पर्यावरणीय निर्णयों में केवल तकनीकी परिभाषा पर्याप्त नहीं है; उसके वास्तविक पारिस्थितिक परिणामों का अध्ययन भी आवश्यक है।

मान लीजिए किसी पहाड़ी की ऊंचाई 95 मीटर है। केवल ऊंचाई के आधार पर उसे "अरावली हिल" की श्रेणी से बाहर रखा जा सकता है। लेकिन यदि उसी पहाड़ी के नीचे महत्वपूर्ण जलभृत पुनर्भरण क्षेत्र है, उस पर स्थानीय वनस्पति है, वह दो बड़े वन्यजीव प्राकृतिक आवासों को जोड़ती है और उसके आसपास वर्षाजल का प्राकृतिक जल-निकासी तंत्र है, तो क्या केवल 5 मीटर की ऊंचाई का अंतर उसकी पारिस्थितिक महत्ता को समाप्त कर देता है? यही वह प्रश्न है जिसे वैज्ञानिक मूल्यांकन में पूछा जाना चाहिए।

इसी प्रकार किसी पहाड़ी की चोटी 100 मीटर से अधिक हो सकती है, लेकिन यदि आसपास का भूदृश्य पहले ही अत्यधिक क्षरित है, तो उसकी पुनर्स्थापन रणनीति अलग हो सकती है। इसलिए संरक्षण नीति को ऊंचाई, भूविज्ञान, जल-विज्ञान,

वनस्पति, भूमि उपयोग, जैव-विविधता और मानव बस्तियों को एक साथ देखना चाहिए।

यहाँ संचयी प्रभाव का सिद्धांत भी महत्वपूर्ण है। किसी एक खनन परियोजना का पर्यावरणीय प्रभाव सीमित दिखाई दे सकता है। लेकिन यदि उसी भूदृश्य में दर्जनों खदानें, सड़कें, क्रशर, विद्युत पारेषण लाइनें, रियल एस्टेट परियोजनाएँ और अन्य निर्माण हों तो उनका संयुक्त प्रभाव बहुत बड़ा हो सकता है। भूजल पुनर्भरण घट सकता है, वन्यजीव गलियारे टूट सकते हैं, धूल और शोर बढ़ सकते हैं तथा जल-निकासी के स्वरूप बदल सकते हैं। इसलिए अरावली जैसी सतत पारिस्थितिक प्रणाली के लिए परियोजना-स्तरीय आकलन के साथ भूदृश्य-स्तरीय आकलन भी आवश्यक है।

सुप्रीम कोर्ट द्वारा सतत खनन प्रबंधन योजना की आवश्यकता पर जोर इसी दिशा में महत्वपूर्ण था। यदि खनन को किसी एक लीज़ के स्तर पर देखा जाए तो पूरी पर्वत श्रृंखला की पारिस्थितिक वहन क्षमता सामने नहीं आती। लेकिन भूदृश्य-व्यापी योजना यह तय कर सकती है कि कौन-से क्षेत्र पूर्णतः खनन-मुक्त हों, किन क्षेत्रों में पुनर्स्थापन हो, किन क्षेत्रों में सीमित गतिविधि संभव हो और किस क्षेत्र में संचयी पर्यावरणीय भार पहले ही सीमा पार कर चुका है।

विकास के पक्ष में एक वास्तविक तर्क यह भी है कि भारत को निर्माण सामग्री और खनिजों की जरूरत है। सड़कें, मकान, रेलवे, उद्योग और आधारभूत संरचना परियोजनाएँ बिना खनिजों के नहीं बन सकतीं। स्थानीय स्तर पर खनन रोजगार और आय का स्रोत भी है। यदि किसी क्षेत्र में खनन अचानक बंद कर दिया जाता है तो खदान श्रमिक, ट्रक संचालक, मशीनरी से जुड़े लोग, छोटे व्यापारी और स्थानीय परिवार प्रभावित हो सकते हैं। इसलिए “पर्यावरण बचाओ” नीति का अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि स्थानीय रोजगार के प्रश्न को नजरअंदाज कर दिया जाए।

लेकिन इसके विपरीत पर्यावरणीय नुकसान की आर्थिक कीमत भी होती है। यदि खनन से भूजल पुनर्भरण क्षेत्र नष्ट होते हैं तो भविष्य में पानी के लिए अधिक बोरवेल, पाइपलाइन और सरकारी योजनाओं की आवश्यकता हो सकती है। यदि वन और प्राकृतिक आवास टूटते हैं तो वन्यजीव संघर्ष बढ़ सकता है। यदि मिट्टी का कटाव बढ़ता है तो कृषि प्रभावित हो सकती है। यदि शहरी गर्मी बढ़ती है तो शीतलन और स्वास्थ्य पर खर्च बढ़ सकता है। इसलिए विकास की वास्तविक लागत केवल खनन रॉयल्टी या रोजगार से नहीं मापी जानी चाहिए।

इसी को पर्यावरणीय अर्थशास्त्र में पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं की अवधारणा से समझा जाता है। प्राकृतिक पहाड़ और जंगल समाज को अनेक सेवाएँ देते हैं—जल

संरक्षण, मृदा संरक्षण, कार्बन भंडारण, जैव-विविधता, जलवायु नियमन, बाढ़ के प्रभाव को कम करना और स्थानीय आजीविका। इन सेवाओं का बाजार मूल्य हमेशा दिखाई नहीं देता, लेकिन इनके समाप्त होने पर समाज को आर्थिक लागत उठानी पड़ती है।

अरावली के संदर्भ में भूजल इसका सबसे स्पष्ट उदाहरण है। सरकारी और न्यायिक दस्तावेजों में अरावली को भूजल पुनर्भरण क्षेत्र के रूप में महत्वपूर्ण माना गया है। केंद्र सरकार ने भी इसे पारिस्थितिक स्थिरता, जैव-विविधता और जल पुनर्भरण से जोड़ा है। यदि किसी विकास संबंधी निर्णय में केवल तत्काल आर्थिक लाभ देखा जाए और भूजल तंत्र के दीर्घकालिक नुकसान का मूल्यांकन न किया जाए, तो वह निर्णय आर्थिक रूप से भी अधूरा हो सकता है।

मानवीय प्रभावों का अध्ययन भी इसी तरह व्यापक होना चाहिए। किसी गाँव के पास अरावली की भूमि पर खनन या निर्माण की अनुमति का अर्थ केवल भूमि के उपयोग में परिवर्तन नहीं है। इससे स्थानीय जलस्रोत, चरागाह, रास्ते, पशुपालन, खेती, धूल, शोर और भूमि के मूल्य पर प्रभाव पड़ सकता है। यदि कोई क्षेत्र पर्यटन या रियल एस्टेट के लिए विकसित होता है तो कुछ लोगों को रोजगार और आय मिल सकती है, लेकिन दूसरी ओर स्थानीय निवासियों के लिए जमीन महंगी हो सकती है, पारंपरिक आजीविका कमजोर हो सकती है और आधारभूत संरचना पर दबाव बढ़ सकता है।

इसलिए "मानवीय प्रभाव" का अध्ययन केवल रोजगार की संख्या गिनने से पूरा नहीं होता। इसमें यह भी देखना चाहिए कि किसे लाभ मिलेगा और किसे लागत उठानी पड़ेगी। एक खनन परियोजना से 500 लोगों को प्रत्यक्ष रोजगार मिल सकता है, लेकिन यदि उसके कारण आसपास के हजारों लोगों के भूजल स्तर पर दीर्घकालीन असर पड़ता है तो दोनों प्रभावों की तुलना आवश्यक है। यही सामाजिक लागत-लाभ विश्लेषण का मूल है।

इसी संदर्भ में स्थानीय जनता की भागीदारी अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। किसी बाहरी विशेषज्ञ के लिए किसी क्षेत्र का पारिस्थितिक मानचित्र बनाना संभव है, लेकिन स्थानीय किसान को पता हो सकता है कि बारिश के बाद पानी किस नाले से आता है, कौन-सा तालाब गर्मियों तक पानी रखता है, किस पहाड़ी पर चराई होती है और किस रास्ते से वन्यजीव गुजरते हैं। इसलिए वैज्ञानिक आँकड़ों और स्थानीय ज्ञान को एक-दूसरे का विकल्प नहीं, बल्कि पूरक माना जाना चाहिए।

सुप्रीम कोर्ट की 25 मई 2026 की प्रक्रिया में हितधारकों की भागीदारी को महत्व दिया गया। अदालत द्वारा गठित उच्चाधिकार प्राप्त समिति को राज्यों, पर्यावरणविदों, संरक्षण विशेषज्ञों, गैर-सरकारी संगठनों (NGOs), खनन पट्टाधारकों, परियोजना प्रस्तावकों, ग्रामीणों, किसानों, खदान श्रमिकों और स्थानीय समुदायों जैसे हितधारकों से विचार लेने की दिशा दी गई। यह व्यवस्था इस प्रश्न का एक महत्वपूर्ण उत्तर है कि भविष्य के निर्णयों में मानवीय प्रभाव का अध्ययन कैसे अधिक विश्वसनीय बनाया जा सकता है।

जुलाई 2026 में समिति ने सार्वजनिक सुझाव और दस्तावेजी साक्ष्य भी आमंत्रित किए। उसे 31 अगस्त 2026 तक व्यापक रिपोर्ट प्रस्तुत करनी है। इसका अर्थ है कि आज, अगस्त 2026 में, अरावली की अंतिम वैज्ञानिक-कानूनी स्थिति अभी पुनर्विचार की प्रक्रिया में है। इसलिए किसी पुराने नवंबर 2025 के निर्णय को वर्तमान और अंतिम व्यवस्था मानना उचित नहीं होगा।

यहीं एक और महत्वपूर्ण तथ्य सामने आता है। 20 नवम्बर के निर्णय के बाद सरकार ने सार्वजनिक रूप से यह तर्क रखा कि 100 मीटर की परिभाषा को गलत तरीके से "100 मीटर से नीचे की हर जमीन पर खनन की अनुमति" के रूप में नहीं समझना चाहिए। सरकार के अनुसार सहायक ढालें, 500 मीटर के भीतर के जुड़े हुए भू-आकृतिक क्षेत्र और कोर/अविच्छिन्न क्षेत्र जैसी सुरक्षा व्यवस्थाएँ भी प्रस्तावित ढाँचे में थीं।

इस सरकारी स्पष्टीकरण को गंभीरता से लेना जरूरी है, क्योंकि सार्वजनिक बहस में कभी-कभी किसी जटिल कानूनी व्यवस्था को एक सरल वाक्य में बदल दिया जाता है। फिर भी आलोचकों की चिंता को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। यदि किसी पारिस्थितिक भूदृश्य की पहचान मूलतः ऊँचाई की सीमा से शुरू होती है, लेकिन उसकी वास्तविक पहचान केवल ऊँचाई के आधार पर निर्धारित नहीं की जा सकती। तो यह जांचना जरूरी है कि उसके बाहर बचने वाले क्षेत्रों पर अन्य कानून पर्याप्त सुरक्षा देते हैं या नहीं। यही वह बिंदु है जिसे नई विशेषज्ञ समिति को वैज्ञानिक रूप से जांचना है।

एक और महत्वपूर्ण प्रश्न है—क्या अरावली की सुरक्षा केवल खनन विनियमन से हो सकती है? उत्तर स्पष्ट रूप से नहीं है। अरावली का क्षरण खनन के अलावा शहरीकरण, सड़कों, अतिक्रमण, भूमि-उपयोग में परिवर्तन, भूजल दोहन, वनस्पति ह्रास और विखंडन से भी हो सकता है। इसलिए यदि किसी नई परिभाषा से खनन नियंत्रण स्पष्ट हो जाए लेकिन अनियंत्रित शहरी विकास जारी रहे, तो पारिस्थितिक समस्या का समाधान नहीं होगा।

हाल के वैज्ञानिक और नीति संबंधी विमर्श में अरावली को एक परस्पर जुड़े हुए भूदृश्य के रूप में देखने की मांग इसी कारण बढ़ी है। दिल्ली-एनसीआर के आसपास असोला, मंगर बानी और जैव-विविधता पार्क जैसे क्षेत्र केवल अलग-अलग हरित खंड नहीं हैं। वे एक बड़े पारिस्थितिक तंत्र का हिस्सा हैं। अगस्त 2026 में सुप्रीम कोर्ट द्वारा नियुक्त समिति ने अपने क्षेत्रीय सर्वेक्षण में मंगर बानी जैसे पारिस्थितिक और सांस्कृतिक महत्त्व वाले क्षेत्रों को भी देखा, जिससे यह संकेत मिलता है कि अरावली की समीक्षा केवल ऊंचाई मापने तक सीमित नहीं रखी जा रही है।

इस पूरी प्रक्रिया से यह सवाल उठता है कि भविष्य में सरकार को किस प्रकार का प्रभाव आकलन करना चाहिए। सबसे पहले **भूवैज्ञानिक आकलन** होना चाहिए, ताकि यह समझा जा सके कि कौन-सी भू-आकृतियाँ वास्तव में अरावली भूवैज्ञानिक तंत्र का हिस्सा हैं। दूसरा **जल-विज्ञान संबंधी आकलन** होना चाहिए, जिसमें जलभृत, पुनर्भरण क्षेत्र, जल-निकासी रेखाओं और मौसमी जल निकायों का अध्ययन हो। तीसरा **जैव-विविधता आकलन** होना चाहिए, जिसमें वन्यजीव प्राकृतिक आवास और गलियारे शामिल हों। चौथा **भूमि-उपयोग आकलन** होना चाहिए, जिसमें खनन, कृषि, शहरीकरण और वन आवरण का वर्तमान मानचित्र बने। पाँचवाँ **सामाजिक प्रभाव आकलन** होना चाहिए, जिसमें गाँवों, किसानों, पशुपालकों और खदान श्रमिकों पर प्रभाव का अध्ययन किया जाए। और छठा **संचयी प्रभाव आकलन** होना चाहिए, जिसमें अलग-अलग परियोजनाओं के संयुक्त प्रभाव का मूल्यांकन किया जाए। इसके साथ जलवायु परिवर्तन संबंधी आकलन भी जरूरी है। अरावली पहले से जल-संकट और गर्मी के दबाव वाले क्षेत्र में स्थित है। यदि भविष्य में वर्षा की परिवर्तनशीलता और अत्यधिक गर्मी बढ़ती है, तो प्राकृतिक जलग्रहण और वनस्पति का महत्व और बढ़ेगा। इसलिए किसी भी विकास संबंधी निर्णय में यह भी देखा जाना चाहिए कि वह क्षेत्र को जलवायु-लचीला बनाएगा या अधिक संवेदनशील।

विकास और पारिस्थितिकी के बीच सही रास्ता “या तो विकास, या पर्यावरण” नहीं है। सही रास्ता सतत विकास है। लेकिन सतत विकास का अर्थ केवल यह लिख देना नहीं है कि “पर्यावरणीय सुरक्षा उपायों का पालन होगा।” इसका अर्थ है कि परियोजना की वास्तविक पारिस्थितिक वहन क्षमता तय हो, निगरानी स्वतंत्र हो, नियमों का प्रवर्तन हो और नुकसान की भरपाई केवल कागज पर नहीं बल्कि जमीन पर दिखाई दे।

अरावली में पुनर्स्थापन भी इसी नीति का महत्वपूर्ण हिस्सा होना चाहिए। जो खनन क्षेत्र पहले ही खराब हो चुके हैं, वहाँ केवल गड्ढे भर देना पर्याप्त नहीं है। मिट्टी, जल-

निकासी तंत्र, स्थानीय वनस्पति और जैव-विविधता को वापस लाना होगा। गुरुग्राम का अरावली जैव-विविधता पार्क इसका एक उपयोगी उदाहरण है, जहाँ पूर्व खनन भूदृश्य को पारिस्थितिक पुनर्स्थापन के माध्यम से जैव-विविधता और शहरी पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं के लिए विकसित किया गया। इस तरह के मॉडल यह दिखाते हैं कि खराब हुई भूमि को वापस पारिस्थितिक कार्य देने की कोशिश संभव है, हालांकि पुनर्स्थापन में समय और निरंतर प्रबंधन दोनों आवश्यक हैं।

इसलिए सरकार के लिए सबसे बड़ी चुनौती केवल "कहाँ खनन हो सकती है" तय करना नहीं है। असली चुनौती यह है कि कहाँ खनन बिल्कुल नहीं होनी चाहिए, कहाँ पुनर्स्थापन जरूरी है, कहाँ सतत गतिविधि संभव है और कहाँ विकास की वहन क्षमता पहले ही समाप्त हो चुकी है। यही अंतर संरक्षण नीति को मजबूत या कमजोर बनाता है।

अब मूल प्रश्न पर लौटें—क्या सरकार ने अरावली पर फैसलों के मानवीय और पर्यावरणीय प्रभाव का पर्याप्त अध्ययन किया?

उपलब्ध तथ्यों के आधार पर सबसे संतुलित उत्तर यह होगा कि सरकार ने अध्ययन और परामर्श की प्रक्रिया जरूर अपनाई थी, लेकिन बाद की न्यायिक घटनाओं से स्पष्ट है कि उस अध्ययन को अंतिम और निर्विवाद वैज्ञानिक मूल्यांकन नहीं माना गया। सरकार की समिति ने राज्यों से परामर्श किया, तकनीकी एजेंसियों को शामिल किया, 100 मीटर स्थानीय उभार पर आधारित परिभाषा तैयार की, 500 मीटर पर्वतमाला मानदंड दिया, कोर/अविच्छिन्न क्षेत्रों और मानचित्रण जैसी सुरक्षा व्यवस्थाएँ सुझाईं तथा सतत खनन प्रबंधन योजना का प्रस्ताव रखा।

लेकिन 29 दिसम्बर 2025 को सुप्रीम कोर्ट द्वारा 20 नवम्बर के निर्णय को रोकना और स्वतंत्र विशेषज्ञ समीक्षा की आवश्यकता बताना यह दिखाता है कि पारिस्थितिक परिणामों और वैज्ञानिक आधार पर और गहन समीक्षा आवश्यक समझी गई। 25 मई 2026 के आदेश ने इस बात को और स्पष्ट किया कि नई उच्चाधिकार प्राप्त समिति को व्यापक मूल्यांकन करना है।

इसलिए इस समय यह कहना अधिक सही होगा कि अरावली पर सरकार और न्यायपालिका की प्रक्रिया "अंतिम निष्कर्ष" के बजाय "वैज्ञानिक पुनर्मूल्यांकन" के चरण में है। यह स्थिति वास्तव में एक अवसर भी है। यदि नई समिति वैज्ञानिक संस्थानों, स्थानीय समुदायों, पर्यावरण समूहों, खनन क्षेत्र, किसानों और राज्य सरकारों की सूचनाओं को एक साथ लेकर पारदर्शी GIS-आधारित आकलन करती है, तो भविष्य की नीति पहले से अधिक मजबूत हो सकती है।

यदि वह केवल पुरानी परिभाषा को नए शब्दों में दोहराती है, तो विवाद समाप्त नहीं होगा।

अरावली की समस्या किसी एक सरकार, किसी एक राज्य या किसी एक अदालत की समस्या नहीं है। यह कई राज्यों में फैला हुआ भूदृश्य है और इसके पारिस्थितिक कार्य प्रशासनिक सीमाओं को नहीं मानते। पानी का पुनर्भरण, वन्यजीव आवागमन, हवा और धूल का प्रवाह तथा भूमि क्षरण किसी राज्य सीमा पर रुकते नहीं हैं। इसलिए नीति भी भूदृश्य-स्तर की होनी चाहिए।

अंततः विकास और पारिस्थितिकी के बीच संघर्ष का समाधान तभी संभव है जब हम "विकास की कीमत" को ईमानदारी से गिनें। यदि किसी परियोजना से रोजगार मिलता है तो उसे गिना जाए। यदि सरकार को रॉयल्टी मिलती है तो उसे गिना जाए। लेकिन यदि उसी परियोजना से भूजल पुनर्भरण घटता है, जंगल टूटता है, वन्यजीव गलियारा बाधित होता है, खेती प्रभावित होती है और भविष्य में पुनर्स्थापन पर खर्च करना पड़ता है, तो उन लागतों को भी गणना में शामिल किया जाए। यही वास्तविक लागत-लाभ विश्लेषण होगा।

अरावली हमें यह सिखाती है कि प्रकृति और विकास दो अलग-अलग खाते नहीं हैं। जिस पानी पर उद्योग चलता है, वही पानी किसान को चाहिए। जिस जमीन पर शहर बनता है, वही जमीन वर्षाजल का पुनर्भरण कर सकती है। जिस पहाड़ी से खनिज निकलता है, वही पहाड़ी जैव-विविधता और मृदा स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण हो सकती है। इसलिए किसी एक उपयोग को अधिकतम करने के बजाय पूरे भूदृश्य का दीर्घकालीन संतुलन देखना आवश्यक है।

20 नवम्बर 2025 का निर्णय इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कानूनी पड़ाव था; उसके बाद 29 दिसम्बर का पुनर्विचार और 2026 की उच्चाधिकार प्राप्त समिति की प्रक्रिया यह बताती है कि अरावली की परिभाषा और संरक्षण को लेकर वैज्ञानिक प्रश्न अभी समाप्त नहीं हुए हैं। आज अगस्त 2026 में समिति सार्वजनिक सुझाव ले रही है और 31 अगस्त तक अपनी रिपोर्ट देने की प्रक्रिया में है।

इसलिए आने वाले निर्णय में सबसे महत्वपूर्ण कसौटी यह नहीं होनी चाहिए कि अरावली का कितना हिस्सा "**कानूनी रूप से पहाड़ी**" कहलाएगा या उसकी सीमाएँ किस तकनीकी परिभाषा के आधार पर निर्धारित की जाएँगी। असली और दीर्घकालीन कसौटी यह होनी चाहिए कि क्या नई व्यवस्था अरावली के पारिस्थितिक कार्यों और पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं को प्रभावी रूप से सुरक्षित रखती है तथा क्या वह स्थानीय लोगों की आजीविका, सामाजिक आवश्यकताओं और विकास की

वास्तविक जरूरतों के साथ न्याय करती है। अरावली की पहचान केवल मानचित्र पर खींची गई रेखा नहीं, बल्कि उसके जल, जंगल, मिट्टी, जैव-विविधता और मानव जीवन से जुड़े व्यापक कार्यों के आधार पर होनी चाहिए।

यदि इसका उत्तर हाँ है, तो विकास और पर्यावरण संरक्षण एक-दूसरे के विरोधी नहीं होंगे। वैज्ञानिक नियोजन के माध्यम से ऐसा विकास संभव है, जिसमें आर्थिक प्रगति के साथ प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण भी सुनिश्चित किया जा सके। लेकिन यदि इसका उत्तर नहीं है, तो कोई भी तकनीकी परिभाषा, सीमांकन या प्रशासनिक व्यवस्था लंबे समय तक इस मूल समस्या का स्थायी समाधान नहीं कर पाएगी।

अरावली के भविष्य के लिए सबसे सुरक्षित और संतुलित रास्ता इसलिए यही है—वैज्ञानिक आधार पर अरावली की पहचान और सीमांकन, स्वतंत्र एवं निष्पक्ष पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन, संचयी प्रभाव आकलन, भूजल और जैव-विविधता की सुरक्षा, स्थानीय समुदायों की सार्थक भागीदारी, पारदर्शी और सार्वजनिक मानचित्रण, अवैध खनन पर कठोर एवं प्रभावी कार्रवाई तथा जहाँ आवश्यक हो वहाँ नियंत्रित, उत्तरदायी और सतत विकास। इसके साथ जलग्रहण क्षेत्रों, वन क्षेत्रों और अत्यधिक संवेदनशील पारिस्थितिकीय क्षेत्रों के लिए स्पष्ट संरक्षण मानदंड निर्धारित किए जाने चाहिए, ताकि विकास की गतिविधियाँ प्राकृतिक तंत्र की वहन-क्षमता के भीतर ही संचालित हों।

यह भी आवश्यक है कि निर्णय केवल वर्तमान परिस्थितियों को देखकर न लिया जाए, बल्कि भविष्य के जलवायु परिवर्तन, बढ़ती आबादी, भूजल संकट, शहरी विस्तार और प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ते दबाव को ध्यान में रखकर दीर्घकालीन दृष्टिकोण अपनाया जाए। अरावली के किसी भी हिस्से में होने वाली गतिविधि का प्रभाव केवल उसी स्थान तक सीमित नहीं रहता; उसका संबंध जल प्रवाह, भूजल, वनस्पति, जैव-विविधता और आसपास के मानव समुदायों से भी हो सकता है। इसलिए निर्णय प्रक्रिया में संचयी पर्यावरणीय प्रभाव को विशेष महत्व देना आवश्यक है।

क्योंकि अंततः अरावली का प्रश्न केवल यह नहीं है कि **"कहाँ खनन हो सकता है?"** या "कहाँ निर्माण की अनुमति दी जा सकती है?" असली प्रश्न इससे कहीं बड़ा और अधिक गंभीर है—**"हम किस प्रकार का भारत आने वाली पीढ़ियों के लिए छोड़ना चाहते हैं?"** क्या ऐसा भारत, जिसमें पहाड़ों से खनिज और अन्य संसाधन तो प्राप्त हों, लेकिन धीरे-धीरे पानी, जंगल, मिट्टी, जैव-विविधता और जीवन की प्राकृतिक सुरक्षा-व्यवस्था समाप्त हो जाए? या ऐसा भारत, जिसमें विकास, उद्योग और रोजगार के अवसर भी हों और प्रकृति की वह आधारभूत व्यवस्था भी सुरक्षित रहे, जिसके ऊपर स्वयं मानव जीवन और आर्थिक विकास टिका हुआ है?

यही संतुलन अरावली के भविष्य की वास्तविक कसौटी है। यदि विकास प्रकृति की कीमत पर होगा, तो उसकी आर्थिक उपलब्धियाँ भी लंबे समय तक टिकाऊ नहीं रह सकतीं। वहीं यदि संरक्षण के नाम पर स्थानीय लोगों की आजीविका और आवश्यक विकास को पूरी तरह नजरअंदाज किया जाएगा, तो सामाजिक स्वीकार्यता और व्यावहारिक सफलता प्रभावित होगी। इसलिए समाधान **विकास बनाम पर्यावरण** में से किसी एक को चुनना नहीं, बल्कि प्रकृति-सम्मत और जन-सम्मत सनातन विकास का रास्ता तैयार करना है।

अंततः इसी प्रश्न का उत्तर अरावली के भविष्य का वास्तविक निर्णय करेगा—
क्या हम अल्पकालिक लाभ के लिए अपनी प्राकृतिक पूँजी को कमजोर करेंगे, या वैज्ञानिक ज्ञान, मजबूत कानून और जनभागीदारी के आधार पर ऐसा विकास मॉडल अपनाएँगे जिसमें अर्थव्यवस्था भी आगे बढ़े और अरावली की जल, जंगल, मिट्टी तथा जैव-विविधता की जीवनदायी आधार-व्यवस्था भी सुरक्षित रहे?

अरावली का संरक्षण वास्तव में इसी व्यापक राष्ट्रीय दृष्टि और आने वाली पीढ़ियों के प्रति हमारी जिम्मेदारी की परीक्षा है।

7.

‘100 मीटर’ की कसौटी — यह वैज्ञानिक आधार था या अरावली की सीमा तय करने का विवादास्पद पैमाना?

अरावली की बहस में शायद सबसे अधिक चर्चा जिस संख्या की हुई, वह है—**100 मीटर**। पहली नजर में यह एक साधारण तकनीकी सीमा लगती है। किसी भू-आकृति की ऊंचाई यदि आसपास की भूमि से 100 मीटर या उससे अधिक है तो उसे अरावली पहाड़ी माना जाए और यदि वह इससे कम है तो वह इस परिभाषा के बाहर हो सकती है। लेकिन जब यही संख्या एक ऐसी पर्वत-श्रृंखला की कानूनी पहचान तय करने लगे जो भूजल, जैव-विविधता, मरुस्थलीकरण, धूल और स्थानीय जलवायु से जुड़ी हुई है, तब प्रश्न केवल इतना नहीं रह जाता कि 100 मीटर को मापना आसान है या कठिन। असली प्रश्न यह बन जाता है कि क्या किसी जटिल पारिस्थितिक तंत्र की पहचान केवल ऊंचाई के एक निश्चित आंकड़े से की जा सकती है? और यदि 100 मीटर वैज्ञानिक रूप से मापने योग्य कसौटी है, तो क्या वह अरावली की पूरी पारिस्थितिक वास्तविकता को भी पर्याप्त रूप से पकड़ती है?

इस प्रश्न को समझने के लिए सबसे पहले 20 नवम्बर 2025 के सुप्रीम कोर्ट के निर्णय की वास्तविक स्थिति समझना जरूरी है। अदालत के सामने मूल समस्या यह थी कि अलग-अलग राज्यों में अरावली की अलग-अलग परिभाषाएं और सीमांकन पद्धतियां थीं। सुप्रीम कोर्ट ने 9 मई 2024 को यह पाया था कि अरावली में अवैध और वैध खनन से जुड़े मामलों को एक साथ देखने के लिए दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान और गुजरात के बीच एक समान परिभाषा आवश्यक है। अदालत के रिकॉर्ड के अनुसार अलग-अलग राज्यों द्वारा अपनाई गई अलग परिभाषाएं अवैध खनन से जुड़े विवादों का एक कारण थीं। इसी वजह से एक समिति गठित करने का निर्देश दिया गया था, जिसमें पर्यावरण मंत्रालय, चारों राज्यों के वन विभाग, भारतीय वन सर्वेक्षण (FSI), केंद्रीय अधिकारप्राप्त समिति (CEC) और भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण (GSI) के प्रतिनिधि शामिल थे।

इस समिति ने 3 अक्टूबर 2025 को अपनी रिपोर्ट दी। रिपोर्ट में अरावली हिल की **परिचालन परिभाषा** के लिए कहा गया कि अरावली जिलों में ऐसी भू-आकृति, जिसकी ऊंचाई **स्थानीय उभार से 100 मीटर या अधिक** हो, अरावली हिल मानी

जाएगी। यहाँ एक महत्वपूर्ण बात यह है कि "100 मीटर" समुद्र तल से ऊंचाई नहीं है। यह आसपास की स्थानीय भूमि के संदर्भ में ऊंचाई है। समिति ने स्थानीय उभार निर्धारित करने के लिए उस सबसे निचली समोच्च रेखा को आधार बनाने का प्रस्ताव किया जो उस भू-आकृति को घेरती है। केवल ऊँचा भाग ही नहीं, बल्कि उस समोच्च रेखा के भीतर की पूरी भू-आकृति, सहायक ढालें और संबंधित भू-आकृतियों को भी अरावली का हिस्सा माना गया।

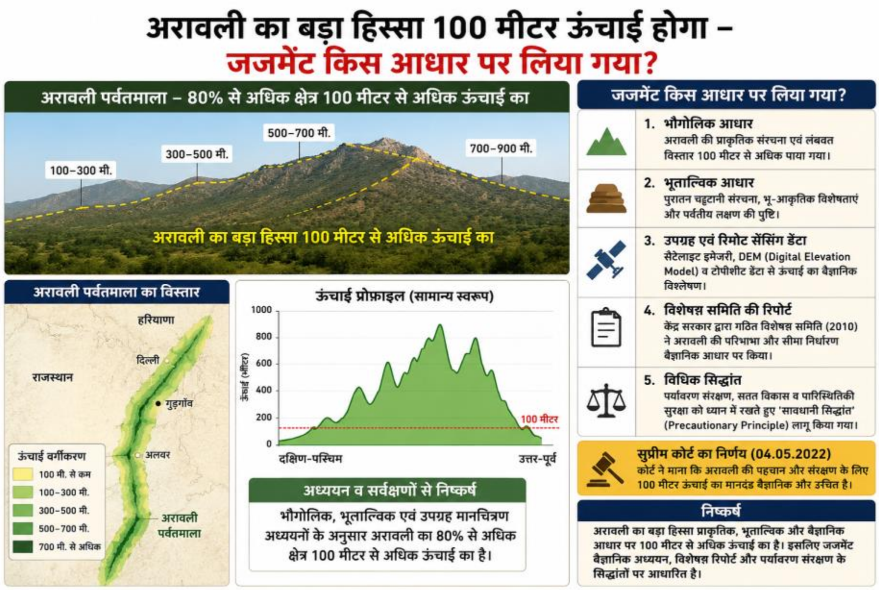

चित्र 7.1: 100 मीटर के उचाई का जजमेंट का आधार

इसका दूसरा हिस्सा और भी महत्वपूर्ण था। दो या अधिक ऐसी अरावली पहाड़ियाँ, जो निर्धारित तरीके से एक-दूसरे से 500 मीटर के भीतर हों, उन्हें मिलाकर **अरावली पर्वतमाला** माना गया। इनके बीच की भूमि, ढालें, छोटी पहाड़ियाँ और संबंधित भू-आकृतियों को भी पर्वतमाला की सीमा में शामिल करने की व्यवस्था की गई। इसलिए यह कहना कि "100 मीटर से छोटी हर पहाड़ी तुरंत कानूनी सुरक्षा से बाहर हो गई" पूरी व्यवस्था को समझे बिना किया गया सरलीकरण होगा। सरकार ने भी बाद में स्पष्ट किया कि 100 मीटर से अधिक ऊंचाई वाली पहाड़ी की सहायक ढालें और उसकी सबसे निचली समोच्च रेखा के भीतर आने वाली भू-आकृतियाँ भी व्यवस्था का हिस्सा हैं तथा 500 मीटर के पर्वतमाला मानदंड के भीतर आने वाले अन्य भू-भागों को भी खनन विनियमन के संदर्भ में शामिल किया गया था।
फिर भी विवाद समाप्त नहीं हुआ, बल्कि यहीं से शुरू हुआ; क्यों?
क्योंकि **कानूनी परिभाषा और पारिस्थितिक पहचान एक ही चीज नहीं हैं।**

किसी पहाड़ी की ऊंचाई को मापना वैज्ञानिक रूप से संभव है। GIS, उपग्रह चित्र, डिजिटल उन्नयन मॉडल, समोच्च रेखा मानचित्र और आधुनिक सर्वेक्षण तकनीकों की सहायता से यह पता लगाया जा सकता है कि किसी भू-आकृति का स्थानीय उभार कितना है। इसलिए "100 मीटर" अपने आप में कोई गैर-वैज्ञानिक या काल्पनिक संख्या नहीं है। समस्या इस संख्या के अस्तित्व से ज्यादा उसके **कानूनी परिणाम** और **पारिस्थितिक पर्याप्तता** को लेकर है।

एक उदाहरण लें। दो पहाड़ियों की कल्पना कीजिए। पहली पहाड़ी आसपास की भूमि से 120 मीटर ऊंची है। दूसरी केवल 60 मीटर ऊंची है। केवल ऊंचाई के आधार पर पहली अरावली की श्रेणी में आएगी और दूसरी नहीं आ सकती। लेकिन यदि दूसरी पहाड़ी किसी महत्वपूर्ण जलग्रहण क्षेत्र के बीच में है, उसके नीचे जलभृत पुनर्भरण होता है, वह वन्यजीवों के आने-जाने का रास्ता है और उसकी वनस्पति आसपास के क्षेत्र में मिट्टी तथा पानी को रोकती है, तो क्या उसकी पारिस्थितिक महत्त्व केवल इसलिए आधी हो जाती है कि वह 100 मीटर से 40 मीटर कम है?
यही विवाद का मूल है।

यहाँ यह भी समझना आवश्यक है कि अरावली हिमालय जैसी युवा, ऊँची और स्पष्ट रूप से उभरी हुई पर्वत-श्रृंखला नहीं है। यह अत्यंत प्राचीन और भूगर्भीय रूप से लंबे समय से क्षरण का सामना कर चुकी प्रणाली है। इसके कई हिस्सों में ऊँची चोटियों के साथ छोटी कटकें, छोटी पहाड़ियाँ, शैल-उद्भेदन, ढालें और पहाड़ियों के बीच के क्षेत्र भी भूदृश्य का हिस्सा हैं। इसलिए अरावली को केवल "ऊँचे पहाड़ों की श्रृंखला" समझना इसकी भौगोलिक प्रकृति को सरल बना देना होगा।

यही कारण है कि 100 मीटर की कसौटी के समर्थकों और आलोचकों के तर्क अलग-अलग हैं।
समर्थकों का पहला तर्क है**-स्पष्टता**। यदि चार राज्यों में अलग-अलग परिभाषाएँ हों तो प्रशासनिक कार्रवाई कठिन हो जाती है। कोई जमीन राजस्थान में अरावली मानी जा सकती है लेकिन दूसरे राज्य में उसी तरह की भू-आकृति को अलग श्रेणी में रखा जा सकता है। इससे खनन पट्टों, पर्यावरणीय स्वीकृतियों, भूमि-उपयोग में बदलाव और नियमों के प्रवर्तन में विवाद पैदा होते हैं। सुप्रीम कोर्ट के 20 नवम्बर 2025 के निर्णय में भी यह पृष्ठभूमि स्पष्ट रूप से दर्ज है कि अलग-अलग राज्यों की परिभाषाएँ समस्या पैदा कर रही थीं।

दूसरा तर्क है**—वस्तुनिष्ठता।** ऊँचाई को GIS और समोच्च रेखा आँकड़ों से मापा जा सकता है। यदि नियम कहता है कि 100 मीटर स्थानीय उभार से ऊपर की भू-आकृति को अरावली माना जाएगा, तो अधिकारियों के पास एक मापनीय मानदंड होगा। इससे मनमाने निर्णय की संभावना कम हो सकती है।

तीसरा तर्क है कि **100 मीटर का अर्थ** केवल "चोटी" नहीं है। समिति की परिभाषा सहायक ढालों और सबसे निचली समोच्च रेखा के भीतर की भू-आकृतियों को भी शामिल करती है। इसी प्रकार 500 मीटर के भीतर की पहाड़ियों को पर्वतमाला में जोड़ने से उनके बीच के क्षेत्र भी नियामक ढाँचे में आते हैं। सरकार ने इस आधार पर दावा किया कि यह पुरानी व्यवस्था की तुलना में अधिक वस्तुनिष्ठ और पारदर्शी व्यवस्था है।

चौथा तर्क यह है कि **100 मीटर का मानदंड** राजस्थान में 9 जनवरी 2006 से खनन विनियमन के संदर्भ में इस्तेमाल किया जा रहा था। सरकार ने 2025 में यह भी कहा कि चारों राज्यों के बीच इसी मानदंड को एक समान रूप में अपनाने पर सहमति बनी और समिति ने इसे अधिक वस्तुनिष्ठ तथा पारदर्शी बनाने के लिए विस्तार किया।

लेकिन इसके सामने एक बहुत महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य भी है। **2010 में सुप्रीम कोर्ट ने राजस्थान की 100 मीटर वाली परिभाषा को पर्याप्त नहीं माना था।** उस समय अदालत ने भारतीय वन सर्वेक्षण (FSI) को अरावली की पूरी पर्वतमाला का उपग्रह चित्रों पर आधारित अध्ययन करने को कहा था और स्पष्ट किया था कि सर्वे केवल उन चोटियों या पहाड़ी भागों तक सीमित नहीं होना चाहिए जो जमीन से 100 मीटर से अधिक ऊँचे हों। बाद में FSI ने 3-डिग्री ढाल आधारित पहचान का इस्तेमाल किया। इस पुराने न्यायिक और तकनीकी इतिहास के कारण 2025 में फिर 100 मीटर को आधार बनाए जाने पर सवाल उठे।

यह तथ्य इस अध्याय के शीर्षक को और गंभीर बनाता है। यदि 100 मीटर 2006 से राजस्थान के खनन विनियमन में इस्तेमाल हो रहा था, तो उसे पूरी तरह नया या अचानक बनाया गया पैमाना कहना सही नहीं होगा। लेकिन यह भी सही है कि **एक पुराने प्रशासनिक मानदंड का अस्तित्व अपने आप यह सिद्ध नहीं करता कि वह पूरे अरावली भूदृश्य की सबसे अच्छी पारिस्थितिक परिभाषा है।**

यही अंतर समझना जरूरी है।
किसी नियम का **"पुराना होना"** और उसका **"वैज्ञानिक रूप से पर्याप्त होना"** अलग बातें हैं।

2010 में FSI द्वारा **3-डिग्री ढाल** दृष्टिकोण की चर्चा इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि ढाल-आधारित दृष्टिकोण केवल यह नहीं पूछता कि कोई भू-आकृति कितनी ऊँची है; वह यह भी देखता है कि भू-भाग किस तरह ऊपर उठता है। एक **कम ढाल वाली लेकिन लंबी कटक(ridge)** और एक तीखी अलग-थलग पहाड़ी की

पारिस्थितिक तथा भू-आकृतिक विशेषताएँ अलग हो सकती हैं। इसी तरह ऊँचाई, ढाल, भूवैज्ञानिक संरचना, वनस्पति और जल-निकासी को मिलाकर भू-आकृति की पहचान करना एक बहुआयामी दृष्टिकोण हो सकता है। 2025 की समिति ने इसके बजाय 100 मीटर स्थानीय उभार को मुख्य परिचालन मानदंड बनाया।

यहाँ यह कहना भी जरूरी है कि 3-डिग्री ढाल और 100 मीटर ऊँचाई एक-दूसरे के सीधे विकल्प नहीं हैं। दोनों अलग प्रकार के माप हैं। एक ढाल या भू-भाग के झुकाव को दर्शाता है, दूसरा सापेक्ष ऊर्ध्वाधर उभार को। इसलिए यह बहस "एक वैज्ञानिक है और दूसरा गैर-वैज्ञानिक" कहकर समाप्त नहीं की जा सकती। असली प्रश्न यह है कि किस उद्देश्य के लिए कौन-सा माप अधिक उपयुक्त है।

यदि उद्देश्य केवल खनन विनियमन के लिए एक समान प्रशासनिक मानचित्र बनाना है, तो 100 मीटर की कसौटी उपयोगी हो सकती है। लेकिन यदि उद्देश्य अरावली के पूरे पारिस्थितिक भूदृश्य को संरक्षित करना है, तो केवल 100 मीटर पर्याप्त है या नहीं—इसका उत्तर अलग से वैज्ञानिक अध्ययन मांगता है।
यही प्रश्न 29 दिसम्बर 2025 को सुप्रीम कोर्ट के सामने फिर आया।

20 नवम्बर को अदालत ने समिति की 100 मीटर वाली परिभाषा स्वीकार की थी। लेकिन 29 दिसम्बर को अदालत ने अपने पहले आदेश को **स्थगित रखते हुए** कहा कि इस मामले में स्वतंत्र, निष्पक्ष और विशेषज्ञ राय प्राप्त करना आवश्यक है। अदालत ने विशेष रूप से इस बात की जाँच की जरूरत मानी कि 100 मीटर की कसौटी से कितनी कम ऊँचाई वाली पहाड़ियाँ बाहर हो सकती हैं और क्या इससे कोई महत्वपूर्ण नियामक अंतर पैदा हो सकता है।

यहीं "100 मीटर" पहली बार केवल **तकनीकी संख्या** नहीं रहा; यह **वैज्ञानिक समीक्षा और परीक्षण का विषय** बन गया।

विवाद का एक चर्चित आँकड़ा था कि राजस्थान में 20 मीटर या उससे अधिक ऊँचाई वाली 12,081 मानचित्रित पहाड़ी भू-आकृतियों में केवल 1,048 ने 100 मीटर की सीमा पार की, यानी लगभग 8.7 प्रतिशत। इस आधार पर कुछ रिपोर्टों और पर्यावरण समूहों ने कहा कि लगभग 90 प्रतिशत छोटी पहाड़ियाँ नई परिभाषा से बाहर हो सकती हैं। लेकिन यहाँ तथ्यात्मक सावधानी बहुत जरूरी है। भारतीय वन सर्वेक्षण (FSI) ने 23 दिसम्बर 2025 को सार्वजनिक रूप से कहा कि उसने ऐसी कोई आधिकारिक अध्ययन नहीं किया था जिसमें यह निष्कर्ष दिया गया हो कि केवल 9 प्रतिशत अरावली पहाड़ियाँ 100 मीटर से अधिक हैं या 90 प्रतिशत पहाड़ियाँ असुरक्षित हो जाएँगी।

इसलिए पुस्तक में यह आँकड़ा लिखते समय उसे **"FSI की आधिकारिक रिपोर्ट में सिद्ध तथ्य"** के रूप में लिखना उचित नहीं होगा। अधिक सही भाषा यह होगी कि कुछ मीडिया रिपोर्टों ने FSI के कथित आंतरिक आकलन का हवाला दिया, लेकिन FSI ने बाद में इस विशिष्ट आकलन को अपनी आधिकारिक अध्ययन के रूप में स्वीकार नहीं किया। यह अंतर तथ्यात्मक ईमानदारी के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

फिर भी इस विवाद से एक वास्तविक वैज्ञानिक प्रश्न समाप्त नहीं होता। वह प्रश्न है— **यदि छोटी पहाड़ियों और कटकें को कानूनी परिभाषा में शामिल न किया जाए तो उनकी पारिस्थितिक कार्यों की रक्षा किस दूसरे कानून या तंत्र से होगी?**

यही वह प्रश्न है जिसका उत्तर केवल "100 मीटर से नीचे खनन की अनुमति नहीं है" कह देने से नहीं मिलता।

सरकार का कहना था कि 100 मीटर से कम ऊँचाई वाली भू-आकृतियाँ भी हर स्थिति में खनन के लिए खुली नहीं हो जातीं। संरक्षित वन, वन्यजीव क्षेत्र, पारिस्थितिक-संवेदनशील क्षेत्र, आर्द्रभूमियाँ और अन्य कानूनी प्रतिबंध अलग से लागू रह सकते हैं। इसके अलावा 100 मीटर से अधिक ऊँची पहाड़ियों की सबसे निचली समोच्च रेखा के भीतर आने वाली भू-आकृतियों और 500 मीटर के पर्वतमाला क्षेत्र को भी संरक्षण ढाँचे में रखा गया था। सरकार ने इसलिए यह तर्क दिया कि "100 मीटर से नीचे की हर जमीन पर खनन खुल गया" कहना गलत है।

यह तर्क महत्वपूर्ण है, लेकिन इसकी अपनी सीमा भी है। यदि कोई छोटा पहाड़ी टीला किसी मौजूदा वन अधिसूचना, पारिस्थितिक-संवेदनशील क्षेत्र या अन्य कानून से संरक्षित नहीं है, तो यह पूछना जरूरी होगा कि नई अरावली परिभाषा से बाहर होने के बाद उसके लिए कौन-सा प्रभावी संरक्षण तंत्र बचता है। इसलिए भविष्य की नीति को **परस्पर संबद्ध कानूनी सुरक्षा व्यवस्थाओं** का स्पष्ट मानचित्र बनाना चाहिए।

यही कारण है कि अरावली की पहचान को केवल **ऊँचाई के मानचित्र** के रूप में नहीं, बल्कि **पारिस्थितिक मानचित्र** के रूप में विकसित किया जाना चाहिए।

एक आदर्श वैज्ञानिक मानचित्र में कम से कम छह परतें होनी चाहिए। पहली परत भूविज्ञान की हो, जिससे पता चले कि कौन-सी भू-आकृतियाँ वास्तव में अरावली भूवैज्ञानिक तंत्र से जुड़ी हैं। दूसरी स्थलाकृति की हो, जिसमें ऊँचाई, स्थानीय उभार और ढाल—तीनों दिखें। तीसरी जल-विज्ञान की हो, जिसमें जल-निकासी रेखाएँ, जलभृत, पुनर्भरण क्षेत्र और मौसमी जल निकाय शामिल हों। चौथी जैव-विविधता की हो, जिसमें वन्यजीव प्राकृतिक आवास और गलियारे दिखें। पाँचवीं वनस्पति और

भूमि-उपयोग की हो। छठी मानव-उपयोग की हो, जिसमें गाँवों, कृषि, चराई, खनन और शहरी विकास का वितरण दिखाई दे।

यदि कोई 60 मीटर ऊँची पहाड़ी इन छह परतों में से पाँच में पारिस्थितिक महत्त्व दिखाती है, तो केवल ऊँचाई के आधार पर उसे पूरी तरह महत्वहीन मानना वैज्ञानिक रूप से कमजोर दृष्टिकोण हो सकता है।

इसके विपरीत, यदि कोई 120 मीटर की भू-आकृति अत्यधिक क्षरित है, तो उसका संरक्षण भी जरूरी हो सकता है, लेकिन उसके प्रबंधन की आवश्यकता अलग होगी। वहाँ पुनर्स्थापन की प्राथमिकता हो सकती है। इस तरह संरक्षण का उद्देश्य केवल "पहाड़ी की पहचान" नहीं, बल्कि भूदृश्य के पारिस्थितिक कार्य की रक्षा होना चाहिए।

सुप्रीम कोर्ट के 20 नवम्बर 2025 के निर्णय में स्वयं एक महत्वपूर्ण बात थी। अदालत ने केवल परिभाषा स्वीकार करके मामला समाप्त नहीं किया। उसने पूरे गुजरात से दिल्ली तक फैली सतत भूवैज्ञानिक कटक के लिए सतत खनन प्रबंधन योजना (MPSM**)** तैयार करने का निर्देश दिया। इस योजना में अनुमेय खनन क्षेत्रों, पारिस्थितिक रूप से संवेदनशील क्षेत्रों, संरक्षण की दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्रों और पुनर्स्थापन की प्राथमिकता वाले क्षेत्रों की पहचान करने तथा संचयी प्रभाव आकलन करने की आवश्यकता रखी गई।

यह बहुत महत्वपूर्ण संकेत है। इसका अर्थ है कि 100 मीटर की परिभाषा अपने आप में पूरी पारिस्थितिक नीति नहीं थी। उसके ऊपर भूदृश्य-स्तरीय प्रबंधन योजना की जरूरत स्वीकार की गई थी। इसलिए इस बहस को केवल "100 मीटर बनाम 3-डिग्री ढाल" तक सीमित करना भी अधूरा होगा। वास्तविक संरक्षण ढाँचे में **परिभाषा, मानचित्रण, पारिस्थितिक क्षेत्र-निर्धारण और खनन प्रबंधन**—चारों को एक साथ देखना होगा।

लेकिन 29 दिसम्बर 2025 के बाद स्थिति बदल गई। 20 नवम्बर 2025 की व्यवस्था को आगे लागू करने से रोक दिया गया और स्वतंत्र विशेषज्ञ समीक्षा की जरूरत सामने आई। 25 मई 2026 को सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट किया कि 3 अक्टूबर 2025 की समिति की रिपोर्ट के व्यापक मूल्यांकन के लिए उच्चाधिकार प्राप्त समिति गठित की जाएगी और निष्पक्ष, तटस्थ तथा स्वतंत्र विशेषज्ञ राय प्राप्त करना आवश्यक है।

यह वर्तमान स्थिति को समझने के लिए सबसे महत्वपूर्ण तथ्य है। अगस्त 2026 तक 100 मीटर की कसौटी को अंतिम और स्थायी अरावली परिभाषा मानना सही नहीं है। मामला सुप्रीम कोर्ट के सामने विचाराधीन है और नई उच्चाधिकार प्राप्त समिति

इस विषय का व्यापक मूल्यांकन कर रही है। 21 जुलाई 2026 को पर्यावरण मंत्रालय ने भी सुप्रीम कोर्ट द्वारा गठित समिति की ओर से सार्वजनिक सुझाव आमंत्रित किए। समिति को 31 अगस्त 2026 से पहले अपनी व्यापक रिपोर्ट सुप्रीम कोर्ट को देनी है। इसमें पर्यावरणविदों, संरक्षण विशेषज्ञों, गैर-सरकारी संगठनों (NGOs), खनन पट्टाधारकों, परियोजना प्रस्तावकों, ग्रामीणों, किसानों, खदान श्रमिकों और स्थानीय समुदायों सहित विभिन्न हितधारकों से सुझाव मांगे गए हैं।

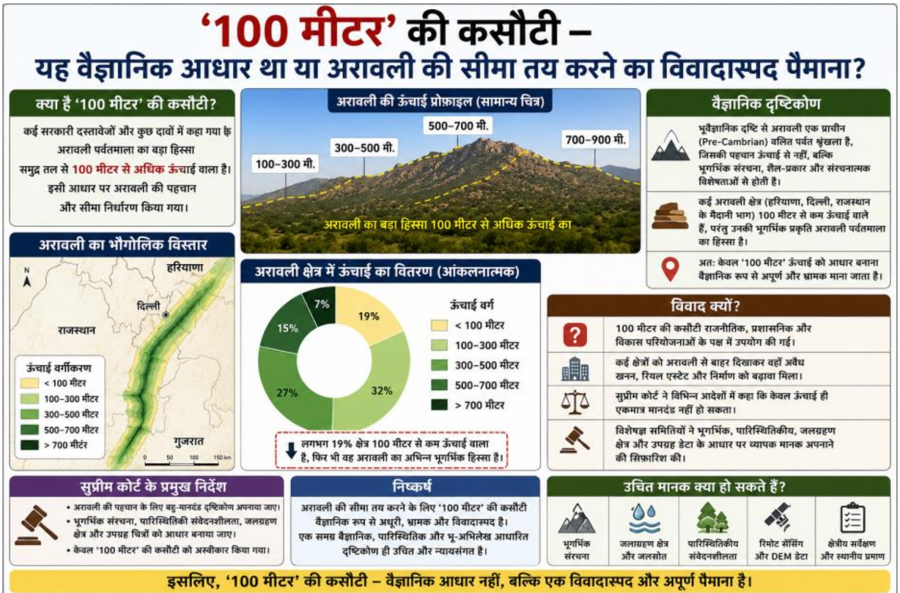

चित्र 7.2: 100 मीटर की कसौटी –वैज्ञानिक आधार या विवादास्मक पैमाना

इस वर्तमान प्रक्रिया का महत्व इसलिए भी है क्योंकि इससे "100 मीटर" का प्रश्न अब केवल सरकारी समिति या अदालत की फाइल का प्रश्न नहीं रहा। यह व्यापक वैज्ञानिक और सामाजिक समीक्षा का विषय बन गया है।

अब प्रश्न यह है कि यदि नई समिति को वास्तव में वैज्ञानिक समाधान देना है तो उसे किन सवालों का जवाब देना चाहिए?

पहला सवाल होना चाहिए—**100 मीटर क्यों?** इस सीमा का भू-आकृतिक आधार क्या है? क्या यह अरावली की भूवैज्ञानिक निरंतरता को पर्याप्त रूप से दर्शाती है? किन वैज्ञानिक अध्ययनों और आँकड़ों से यह सीमा निर्धारित की गई?

दूसरा सवाल होना चाहिए—**स्थानीय उभार कैसे निर्धारित होगा?** सबसे निचली समोच्च रेखा किस गुणवत्ता और विभेदन वाले मानचित्र से निर्धारित की जाएगी? यदि भू-भाग धीरे-धीरे बदलता है तो आधार-रेखा कैसे तय होगी? अलग-अलग मानचित्रण विभेदन पर परिणाम कितना बदल सकता है?

तीसरा सवाल—**क्या केवल ऊँचाई पर्याप्त है?** यदि नहीं, तो ढाल, भूविज्ञान, वनस्पति, जल-विज्ञान और पारिस्थितिक संपर्कता को परिभाषा में किस प्रकार जोड़ा जाए?

चौथा सवाल—**100 मीटर से नीचे की भू-आकृतियों का क्या होगा?** क्या वे किसी अन्य संरक्षण श्रेणी में रहेंगी? यदि नहीं, तो उनका पारिस्थितिक संरक्षण किस तंत्र से होगा?

पाँचवाँ सवाल—**500 मीटर का पर्वतमाला मानदंड कितना वैज्ञानिक है?** क्या 500 मीटर की दूरी सभी प्रकार के भू-भाग और पारिस्थितिक गलियारों के लिए समान रूप से उचित है? कहीं दो पहाड़ियाँ 600 या 700 मीटर दूर हों, लेकिन उनके बीच का क्षेत्र पारिस्थितिक संपर्कता के लिए महत्वपूर्ण हो, तो क्या केवल 500 मीटर के कारण उसे बाहर रखा जाना चाहिए?

छठा सवाल—**संचयी प्रभाव क्या होगा?** किसी एक खदान को अनुमति देने से पहले पूरे भूदृश्य में पहले से मौजूद खनन, सड़कों, क्रशरों, निर्माण और भूजल दबाव को कैसे जोड़ा जाएगा?

सातवाँ सवाल—**जलवायु परिवर्तन का क्या प्रभाव है?** यदि भविष्य में वर्षा का स्वरूप बदले, भूजल पुनर्भरण पर दबाव बढ़े और गर्मी अधिक हो, तो क्या आज की भू-आकृति परिभाषा अगले 50 वर्षों के लिए पर्याप्त होगी?

आठवाँ और सबसे महत्वपूर्ण सवाल—**स्थानीय लोगों का क्या होगा?** यदि किसी क्षेत्र में खनन बंद होता है तो वहाँ के खदान श्रमिकों और परिवारों के लिए वैकल्पिक आजीविका क्या होगी? यदि संरक्षण बढ़ता है तो क्या स्थानीय ग्राम समुदायों को पुनर्स्थापन, पारिस्थितिकी पर्यटन, पौधशाला, जलग्रहण प्रबंधन और वन-आधारित आजीविकाओं में अवसर दिए जाएंगे?

इससे स्पष्ट है कि 100 मीटर का विवाद वास्तव में **"100" बनाम "कोई दूसरा नंबर"** का विवाद नहीं है। यह **एक-आयामी परिभाषा बनाम बहुआयामी पारिस्थितिक परिभाषा** का विवाद है।

यहाँ एक और बात समझना जरूरी है। विज्ञान में **सीमा-मान** का उपयोग असामान्य नहीं है। नदी की बाढ़ की सीमा, वन क्षेत्र का वर्गीकरण, भूकंपीय क्षेत्र, प्रदूषण मानक और पारिस्थितिक सुरक्षा क्षेत्रों में सीमा-मान का इस्तेमाल किया जाता है। इसलिए यह कहना कि "100 मीटर संख्या है, इसलिए वैज्ञानिक नहीं है" गलत होगा। विज्ञान में संख्या आवश्यक होती है। लेकिन वैज्ञानिकता इस बात से तय होती है कि उस

संख्या का चयन किस प्रमाण के आधार पर हुआ, उसका उद्देश्य क्या है, उसकी अनिश्चितता कितनी है और क्या वह वास्तविक दुनिया की जटिलता को पर्याप्त रूप से दर्शाती है।

यदि 100 मीटर केवल इसलिए चुना गया क्योंकि राजस्थान में 2006 से इस्तेमाल हो रहा था, तो यह प्रशासनिक निरंतरता का तर्क है। यदि उसके पीछे भू-आकृतिक और पारिस्थितिक प्रमाण हैं, जो दिखाते हैं कि 100 मीटर से नीचे की अधिकांश भू-आकृतियाँ अरावली पारिस्थितिकी तंत्र के लिए महत्वपूर्ण नहीं हैं, तो यह वैज्ञानिक औचित्य होगा। इन दोनों बातों को अलग-अलग जाँचना जरूरी है।

इसी प्रकार 3-डिग्री ढाल को वैज्ञानिक मान लेना भी पर्याप्त नहीं होगा। यदि ढाल मानदंड के कारण किसी महत्वपूर्ण कटक का कुछ हिस्सा छूट जाता है, तो उसका भी पारिस्थितिक परीक्षण जरूरी है। इसलिए भविष्य की परिभाषा संभवतः एक समग्र मानदंड के रूप में अधिक मजबूत हो सकती है—जहाँ ऊँचाई और ढाल के साथ भूविज्ञान, जल-विज्ञान, जैव-विविधता और भूदृश्य संपर्कता को भी ध्यान में रखा जाए।

यहाँ सावधानी के सिद्धांत भी महत्वपूर्ण है। पर्यावरणीय कानून में जब किसी गतिविधि से गंभीर या अपरिवर्तनीय पारिस्थितिक नुकसान की आशंका हो और वैज्ञानिक निश्चितता पूरी न हो, तो केवल "अभी नुकसान साबित नहीं हुआ" कहकर गतिविधि को आगे बढ़ाना उचित नहीं माना जाता। अरावली जैसी अत्यंत प्राचीन और पहले से दबाव झेल रही पर्वत-प्रणाली में यह सिद्धांत विशेष महत्व रखता है।

यदि किसी छोटी कटक के हटने के बाद भूजल पुनर्भरण में गिरावट आती है, वन्यजीव गलियारा टूटता है या धूल का आवागमन बढ़ता है, तो बाद में उस कटक को फिर उसी रूप में वापस लाना संभव नहीं होगा। इसलिए परिभाषा तय करते समय अपरिवर्तनीयता को भी ध्यान में रखना चाहिए।

इसी कारण 29 दिसम्बर 2025 का सुप्रीम कोर्ट आदेश महत्वपूर्ण मोड़ था। अदालत ने कहा कि पहले स्वतंत्र और निष्पक्ष विशेषज्ञ राय ली जाए और उसके बाद ही 20 नवम्बर की दिशा में आगे बढ़ा जाए। मई 2026 में अदालत ने इसी व्यापक विशेषज्ञ मूल्यांकन की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया और उच्चाधिकार प्राप्त समिति गठित की।
आज की स्थिति इसलिए यह है कि "100 मीटर" को न तो पूरी तरह खारिज कर देना चाहिए और न ही इसे अंतिम वैज्ञानिक सत्य मान लेना चाहिए। यह एक मापने योग्य भू-आकृतिक मानदंड है, जिसे 2025 की समिति ने खनन विनियमन के लिए परिचालन परिभाषा के रूप में प्रस्तावित किया और सुप्रीम कोर्ट ने 20 नवम्बर को

स्वीकार किया था। लेकिन बाद में उसी व्यवस्था को अदालत ने रोक दिया और स्वतंत्र विशेषज्ञ समीक्षा की जरूरत महसूस की। इसलिए इसकी पारिस्थितिक पर्याप्तता का अंतिम निर्णय अभी होना बाकी है।

इस पूरे विवाद से एक बड़ा सबक भी निकलता है। प्राकृतिक संसाधनों की कानूनी सीमाएं बनाते समय नक्शे की सुविधा और प्रकृति की वास्तविकता में संतुलन बनाना आवश्यक है। प्रशासन को स्पष्ट सीमा चाहिए, लेकिन प्रकृति हमेशा साफ रेखाओं में नहीं बंटी होती। पहाड़ी धीरे-धीरे मैदान में बदलती है। जलग्रहण क्षेत्र एक समोच्च रेखा पर समाप्त नहीं होता। वन्यजीवों को यह पता नहीं होता कि कौन-सी कटक (ridge) 99 मीटर है और कौन-सी 101 मीटर। हवा भी कानूनी सीमा नहीं मानती। वर्षाजल भी राज्य की सीमा पर नहीं रुकता।
यही कारण है कि अरावली के लिए भविष्य की सबसे मजबूत परिभाषा वह होगी जो कानूनी रूप से स्पष्ट, वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित और पारिस्थितिक रूप से व्यापक हो।

यदि 100 मीटर की कसौटी वैज्ञानिक परीक्षण में टिकती है, तो उसे सहायक ढालों, जुड़ी हुई भू-आकृतियों, जल-विज्ञान संबंधी क्षेत्रों और पारिस्थितिक सुरक्षा उपायों के साथ लागू किया जा सकता है। यदि अध्ययन यह दिखाता है कि 100 मीटर महत्वपूर्ण निम्न अरावली भू-आकृतियों को बाहर कर देता है, तो सीमा को संशोधित या बहु-मापदंडीय ढाँचे में बदला जाना चाहिए। यदि अलग-अलग क्षेत्रों में अलग पारिस्थितिक विशेषताएँ हैं, तो एक राष्ट्रीय समान परिभाषा के साथ क्षेत्र-विशिष्ट संरक्षण क्षेत्र-निर्धारण की जरूरत हो सकती है।
अंततः “100 मीटर” का सबसे सही मूल्यांकन यही है कि यह माप की कसौटी है, अरावली की पूरी पहचान नहीं।

अरावली को बचाने के लिए यह जानना जरूरी है कि कौन-सी जमीन कितनी ऊँची है; लेकिन उतना ही जरूरी यह जानना है कि वह जमीन क्या काम करती है। क्या वह पानी रोकती है? क्या वह भूजल पुनर्भरण करती है? क्या वह वन्यजीवों को जोड़ती है? क्या वह धूल और मरुस्थलीकरण को रोकती है? क्या वह स्थानीय लोगों की आजीविका से जुड़ी है? क्या वह जलवायु लचीलापन बढ़ाती है? यदि इन प्रश्नों का उत्तर “हाँ” है, तो उसकी पारिस्थितिक महत्ता केवल उसकी ऊँचाई से तय नहीं की जा सकती।

इसलिए इस अध्याय का निष्कर्ष किसी पक्ष के पक्ष या विपक्ष में नहीं बल्कि एक वैज्ञानिक सिद्धांत के रूप में सामने आता है—**अरावली की कानूनी सीमा निर्धारित करने के लिए 100 मीटर उपयोगी माप हो सकता है, लेकिन उसे अरावली की पारिस्थितिक सीमा का अकेला पैमाना मानना वैज्ञानिक रूप से**

पर्याप्त सिद्ध नहीं हुआ है। 2025 में इसे एकरूप खनन परिभाषा के रूप में स्वीकार किया गया था; 29 दिसम्बर 2025 को उस व्यवस्था को रोक दिया गया; 2026 में सुप्रीम कोर्ट ने स्वतंत्र विशेषज्ञ समीक्षा के लिए उच्चाधिकार प्राप्त समिति गठित की; और जुलाई 2026 में इस समिति ने जनता तथा विभिन्न हितधारकों से सुझाव माँगे हैं। इसलिए अगस्त 2026 में अंतिम निष्कर्ष अभी विशेषज्ञ और न्यायिक समीक्षा के अधीन है।

अरावली के भविष्य का सही निर्णय शायद किसी एक संख्या से नहीं होगा। वह निर्णय तब मजबूत होगा जब ऊंचाई, ढलान, भूगर्भशास्त्र, जल, जंगल, जैव-विविधता, वन्यजीव गलियारे, भूमि उपयोग, स्थानीय आजीविका और जलवायु जोखिम—इन सभी को एक ही वैज्ञानिक दृष्टि में देखा जाएगा**।** क्योंकि अरावली केवल 100 मीटर से ऊपर उठी हुई जमीन नहीं है। **अरावली एक जीवित भूदृश्य है—और किसी जीवित भूदृश्य की पहचान केवल उसकी ऊंचाई से नहीं, बल्कि उसके जीवनदायी कार्यों से होती है।**

8.

अरावली को कैसे बचाया जाए? — कानून, विज्ञान, जनभागीदारी और संरक्षण का रास्ता

अरावली को बचाने का प्रश्न अब केवल यह प्रश्न नहीं रह गया है कि किस पहाड़ी पर खनन हो सकता है और किस पहाड़ी पर नहीं। पिछले कुछ वर्षों की न्यायिक प्रक्रिया, वैज्ञानिक बहस और सरकारी संरक्षण योजनाओं ने यह स्पष्ट कर दिया है कि अरावली एक ऐसी प्राकृतिक व्यवस्था है जिसे किसी एक कानून, किसी एक विभाग या किसी एक योजना से सुरक्षित नहीं किया जा सकता। इसे बचाने के लिए कानून की स्पष्टता, वैज्ञानिक प्रमाण, पारदर्शी भू-मानचित्रण, जल और जैव-विविधता की रक्षा, अवैध खनन पर कठोर कार्रवाई, क्षतिग्रस्त भूमि का पुनरुद्धार और सबसे बढ़कर स्थानीय समाज की भागीदारी—इन सभी को एक साथ लेकर चलना होगा। यही वह रास्ता है जिससे अरावली को केवल कागज पर संरक्षित क्षेत्र नहीं बल्कि वास्तव में जीवित और कार्यशील पारिस्थितिक तंत्र बनाया जा सकता है।

अरावली के संरक्षण की सबसे पहली शर्त उसकी सही पहचान है। 20 नवम्बर 2025 के सुप्रीम कोर्ट के निर्णय के पीछे भी यही समस्या थी कि अलग-अलग राज्यों में अरावली की पहाड़ियों और पर्वतमालाओं की अलग-अलग परिभाषाएँ और सीमाएँ थीं। अदालत ने इस बात को गंभीर माना कि एक ही पर्वत-तंत्र को अलग-अलग प्रशासनिक मानदंडों से देखने के कारण खनन और संरक्षण से जुड़े विवाद पैदा हो रहे थे। इसी पृष्ठभूमि में एक समिति बनाई गई थी, जिसमें केंद्र सरकार, दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान और गुजरात के वन विभागों के साथ भारतीय वन सर्वेक्षण, केंद्रीय अधिकारप्राप्त समिति और भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण जैसे संस्थानों को शामिल किया गया। समिति का उद्देश्य एक समान और वैज्ञानिक आधार तैयार करना था।

लेकिन अरावली को बचाने का रास्ता केवल एक नई परिभाषा से शुरू होकर वहीं समाप्त नहीं हो सकता। 100 मीटर की कसौटी को लेकर जो विवाद सामने आया, उसने यही सिखाया कि किसी प्राचीन पर्वत-तंत्र की पहचान केवल ऊँचाई से नहीं की जा सकती, जब तक यह वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित न हो कि वह कसौटी उसके भूगर्भीय, जलवैज्ञानिक और पारिस्थितिक चरित्र को पर्याप्त रूप से दर्शाती है। इसी

कारण 20 नवम्बर के निर्णय के बाद 29 दिसम्बर 2025 को सुप्रीम कोर्ट ने उस व्यवस्था को रोकते हुए स्वतंत्र विशेषज्ञ समीक्षा की आवश्यकता महसूस की और 2026 में उच्चाधिकार प्राप्त समिति की प्रक्रिया आगे बढ़ी। जुलाई 2026 में इस समिति ने राज्यों, पर्यावरणविदों, संरक्षणवादियों, गैर-लाभकारी संगठनों, खनन पट्टाधारकों, परियोजना प्रस्तावकों, ग्रामीणों, किसानों, खदान मजदूरों और स्थानीय समुदायों से सुझाव और दस्तावेज माँगे। समिति को अपनी व्यापक रिपोर्ट 31 अगस्त 2026 से पहले सुप्रीम कोर्ट को देनी है।

इसलिए 13 अगस्त 2026 की स्थिति में अरावली की अंतिम कानूनी और वैज्ञानिक परिभाषा को अभी अंतिम रूप प्राप्त नहीं हुआ है। सुप्रीम कोर्ट द्वारा गठित विशेषज्ञ समिति अगस्त के प्रारंभ में क्षेत्रीय सर्वेक्षण भी शुरू कर चुकी है और दिल्ली-एनसीआर तथा राजस्थान के महत्वपूर्ण अरावली क्षेत्रों का स्थल निरीक्षण कर रही है। हाल की रिपोर्टों के अनुसार समिति ने मंगर बानी जैसे पारिस्थितिक रूप से महत्वपूर्ण क्षेत्र का भी निरीक्षण किया है और मजबूत कानूनी संरक्षण की आवश्यकता पर जोर दिया है। यह वर्तमान प्रक्रिया इस बात का संकेत है कि अरावली को बचाने के लिए भविष्य का रास्ता केवल पुराने नक्शे या किसी एक संख्या पर आधारित नहीं होना चाहिए, बल्कि जमीन पर मौजूद वास्तविक पारिस्थितिकी को समझकर तय होना चाहिए।

अरावली की रक्षा का **पहला स्तंभ** इसलिए **कानून की स्पष्टता और मजबूती** है। भारत में पर्यावरण संरक्षण के लिए पहले से कई महत्वपूर्ण कानून मौजूद हैं। पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 केंद्र सरकार को पर्यावरण की रक्षा और सुधार के लिए व्यापक शक्तियां देता है। इसी कानून के तहत पर्यावरणीय प्रभाव आकलन की व्यवस्था विकसित हुई और 2006 की पर्यावरण प्रभाव आकलन (EIA) अधिसूचना ने निर्धारित परियोजनाओं के लिए पूर्व पर्यावरणीय स्वीकृति की व्यवस्था स्थापित की । वन संरक्षण संबंधी वर्तमान केंद्रीय कानून भी वन भूमि के संरक्षण और गैर-वन उपयोग में परिवर्तन को नियंत्रित करने के लिए महत्वपूर्ण है। जैव विविधता अधिनियम का उद्देश्य जैव-विविधता का संरक्षण, उसके घटकों का सतत उपयोग और जैव संसाधनों से मिलने वाले लाभों का न्यायसंगत वितरण है।

इन कानूनों की मौजूदगी महत्वपूर्ण है, लेकिन केवल कानून का होना पर्याप्त नहीं है। अरावली की वास्तविक समस्या कई बार कानून के अभाव से अधिक कानून के कमजोर क्रियान्वयन से जुड़ी रही है। यदि किसी क्षेत्र में अवैध खनन हो रहा है, पहाड़ी काटी जा रही है, वन क्षेत्र में अतिक्रमण हो रहा है या प्राकृतिक जल-निकासी बंद की जा रही है और प्रशासन समय पर कार्रवाई नहीं करता, तो सबसे अच्छा

कानून भी कागज तक सीमित रह जाता है। इसलिए अरावली के लिए कानूनों की संख्या बढ़ाने से अधिक महत्वपूर्ण उनके बीच स्पष्ट समन्वय और प्रभावी प्रवर्तन है।

यहाँ एक एकीकृत अरावली संरक्षण कानून या विशेष अरावली संरक्षण ढाँचे पर भी विचार किया जा सकता है, बशर्ते वह मौजूदा कानूनों से टकराने के बजाय उन्हें समन्वित करे। ऐसा ढाँचा अरावली की पूरी भौगोलिक निरंतरता को ध्यान में रख सकता है और खनन, निर्माण, भूमि-उपयोग में परिवर्तन, भूजल दोहन, वन भूमि के गैर-वानिकी उपयोग तथा जैव-विविधता संरक्षण के लिए एक भूदृश्य-स्तरीय व्यवस्था बना सकता है। इससे चार राज्यों में अलग-अलग नियमों के कारण पैदा होने वाली अस्पष्टता कम की जा सकती है। हालांकि ऐसा कोई नया कानून बनाना नीति और विधायी प्रक्रिया का विषय होगा; तत्काल आवश्यकता यह है कि मौजूदा कानूनी व्यवस्थाओं को एक-दूसरे से जोड़कर लागू किया जाए।

कानूनी संरक्षण का दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धांत लोक न्यास सिद्धांत (Public Trust Doctrine) है। सुप्रीम कोर्ट ने अनेक पर्यावरणीय मामलों में यह सिद्धांत स्वीकार किया है कि प्राकृतिक संसाधन केवल सरकार की संपत्ति नहीं हैं; राज्य उनके न्यासी के रूप में जनता के हित में उनका संरक्षण करने के लिए बाध्य है। 2022 के एक महत्वपूर्ण निर्णय में सुप्रीम कोर्ट ने वनों, प्रवाहित जल और अन्य प्राकृतिक संसाधनों के संदर्भ में लोक न्यास सिद्धांत तथा सावधानी के सिद्धांत (Precautionary Principle) को पर्यावरणीय कानून का हिस्सा माना। अदालत ने यह भी कहा कि संविधान के अनुच्छेद 21, 48A और 51A(g) को पढ़ने पर पर्यावरण संरक्षण राज्य और नागरिक दोनों की जिम्मेदारी बनता है।

इस सिद्धांत को अरावली पर लागू करने का अर्थ बहुत स्पष्ट है। अरावली की पहाड़ियां, जंगल, जलग्रहण क्षेत्र और जैव-विविधता केवल आज की पीढ़ी के उपयोग की वस्तु नहीं हैं। उनका संरक्षण भविष्य की पीढ़ियों के अधिकार से भी जुड़ा है। इसलिए किसी भी विकास परियोजना का निर्णय केवल यह देखकर नहीं होना चाहिए कि उससे तत्काल राजस्व या रोजगार कितना मिलेगा। यह भी देखना होगा कि उससे आने वाले दशकों में पानी, मिट्टी, जैव-विविधता और स्थानीय आजीविका पर क्या असर पड़ेगा।

यहीं से सतत विकास और एहतियाती सिद्धांत (precautionary principle) का महत्व बढ़ जाता है। सुप्रीम कोर्ट ने बार-बार कहा है कि पर्यावरणीय निर्णयों में सतत विकास को ध्यान में रखा जाना चाहिए और जहां गंभीर पर्यावरणीय नुकसान की आशंका हो, वहां वैज्ञानिक अनिश्चितता को नुकसान की अनदेखी का आधार नहीं बनाया जा सकता। 2024 के एक महत्वपूर्ण पर्यावरणीय निर्णय में अदालत ने एहतियाती सिद्धांत को इस रूप में समझाया कि निर्णय लेने वालों को वैज्ञानिक

निश्चितता की प्रतीक्षा किए बिना संभावित पर्यावरणीय नुकसान से बचाव के लिए कदम उठाने चाहिए।

अरावली में इस सिद्धांत का सबसे व्यावहारिक अर्थ यह होगा कि जिन क्षेत्रों का पारिस्थितिक मूल्य बहुत अधिक है, वहाँ पहले संरक्षण और बाद में विकास की नीति अपनाई जाए। यदि किसी क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूजल पुनर्भरण क्षेत्र, वन्यजीव गलियारा, प्राकृतिक वन, आर्द्रभूमि या अत्यधिक संवेदनशील भूवैज्ञानिक संरचना मौजूद है, तो वहाँ "पहले परियोजना, बाद में नुकसान का अध्ययन" वाली सोच के बजाय "पहले पारिस्थितिक वहन क्षमता, फिर विकास" की सोच अपनानी चाहिए।

अरावली बचाने का **दूसरा स्तंभ—विज्ञान और सटीक मानचित्रण** है। अब ऐसी तकनीक उपलब्ध है, जिससे पूरे अरावली भूदृश्य का उच्च-रिज़ॉल्यूशन डिजिटल मानचित्र तैयार किया जा सकता है। उपग्रह चित्र, LiDAR, डिजिटल उन्नयन मॉडल, ड्रोन सर्वेक्षण, GIS परतें, भूवैज्ञानिक मानचित्र, भूजल आँकड़े और जैव-विविधता मानचित्रण को एक साथ जोड़कर ऐसा अरावली एटलस बनाया जा सकता है, जो केवल पहाड़ी की ऊँचाई नहीं बताए, बल्कि उसके पारिस्थितिक कार्यों को भी दर्ज करे।

चित्र 8.1: अरावली को कैसे बचाएं –कानून, विज्ञानं, जनभागीदारी व संरक्षण

भविष्य का अरावली मानचित्र केवल यह न बताए कि कोई भू-भाग 100 मीटर ऊँचा है या 70 मीटर। उसमें यह भी दिखाई देना चाहिए कि वह किस जलभृत से जुड़ा है, वहाँ कौन-सा जल-निकासी तंत्र है, वनस्पति किस प्रकार की है, कौन-सी वन्यजीव प्रजातियाँ वहाँ पाई जाती हैं, क्या वह किसी गलियारे का हिस्सा है, वहाँ खनन का इतिहास क्या है और आसपास कितनी मानव बस्ती है। ऐसी बहु-परतीय मानचित्रण से 100 मीटर जैसे एकल मानदंड के कारण पैदा होने वाले विवादों को अधिक वैज्ञानिक ढंग से समझा जा सकेगा।

इसके साथ संचयी प्रभाव आकलन को अनिवार्य बनाना चाहिए। किसी एक खनन परियोजना को अलग से देखकर यह कहना कि उसका पर्यावरणीय प्रभाव सीमित है, पर्याप्त नहीं होगा। यदि उसी इलाके में दस अन्य खदानें, पत्थर क्रशर, सड़कें, आवासीय परियोजनाएँ और भूजल दोहन मौजूद हैं, तो उनका संयुक्त प्रभाव कहीं अधिक हो सकता है। सुप्रीम कोर्ट ने 20 नवम्बर 2025 के निर्णय में अरावली के लिए व्यापक सतत खनन प्रबंधन योजना की आवश्यकता पर जोर दिया था, जिसमें खनन क्षेत्र, पारिस्थितिक रूप से संवेदनशील क्षेत्र, संरक्षण की दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्र, पुनर्स्थापन की प्राथमिकता वाले क्षेत्र और संचयी प्रभाव को ध्यान में रखने की दिशा दी गई थी।

अरावली में भविष्य की खनन नीति इसलिए “खदान-दर-खदान” नहीं, बल्कि “भूदृश्य-दर-भूदृश्य” होनी चाहिए। किसी क्षेत्र की कुल पारिस्थितिक वहन क्षमता निर्धारित की जानी चाहिए। यदि किसी भूदृश्य में पहले से भूजल दबाव, प्राकृतिक आवासों का विखंडन और भूमि क्षरण सीमा के करीब पहुँच चुके हैं, तो वहाँ नई खनन लीज़ को केवल परियोजना-स्तरीय स्वीकृति के आधार पर अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। इसके विपरीत, जिन क्षेत्रों में वैज्ञानिक अध्ययन सीमित गतिविधि की अनुमति देता है, वहाँ भी पुनर्स्थापन, प्रदूषण नियंत्रण और निगरानी की कठोर शर्तें होनी चाहिए।

अरावली बचाने का **तीसरा रास्ता—अवैध खनन पर तकनीक-आधारित निगरानी** है। केवल निरीक्षण दलों पर निर्भर रहने की जगह उपग्रह चित्रों और नियमित दूरसंवेदी विश्लेषण से खनन गड्ढों, नई सड़कों, विस्फोट वाले क्षेत्रों और भूमि-उपयोग में बदलाव का पता लगाया जा सकता है। प्रत्येक खनन लीज़ की GIS सीमा सार्वजनिक पोर्टल पर दिखाई जा सकती है। किस खदान के पास पर्यावरणीय स्वीकृति है, उसकी वैध सीमा क्या है, उत्पादन कितना स्वीकृत है और पुनर्स्थापन की स्थिति क्या है—यह जानकारी जनता के लिए उपलब्ध होनी चाहिए। इससे पारदर्शिता बढ़ेगी और स्थानीय नागरिक भी निगरानी में भाग ले सकेंगे।

अरावली के संरक्षण में पानी को केंद्र में रखना होगा। अरावली का मूल्य केवल जंगल या पहाड़ी के रूप में नहीं, बल्कि जलागम तंत्र के रूप में भी है। इसलिए पहाड़ियों की ढालों, प्राकृतिक नालों, मौसमी धाराओं, तालाबों और पुनर्भरण क्षेत्रों को संरक्षित किया जाना चाहिए। जहाँ खनन के कारण जल-निकासी तंत्र टूट गया है, वहाँ वैज्ञानिक जलागम पुनर्स्थापन किया जाना चाहिए। पुराने खनन गड्ढों को हर जगह केवल मिट्टी से भर देना उचित नहीं होगा; उनकी भू-आकृति, जल-प्रवाह और भूजल पर प्रभाव का अध्ययन करके पुनर्स्थापन की रूपरेखा तैयार करनी चाहिए।

इसी प्रकार वर्षाजल संरक्षण की छोटी-छोटी स्थानीय संरचनाएँ—जोहड़, तालाब, चेक डैम और समोच्च रेखा-आधारित जल-संचयन—स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार विकसित की जा सकती हैं। इसका उद्देश्य केवल पानी जमा करना नहीं, बल्कि पूरे जलागम क्षेत्र में जल का अंतःस्रवण और मृदा नमी बढ़ाना होना चाहिए। यदि अरावली के पारिस्थितिक पुनर्स्थापन को जल सुरक्षा से जोड़ा जाए तो इसका लाभ केवल जंगल को नहीं, बल्कि किसानों, पशुपालकों और शहरों को भी मिलेगा।

चौथा रास्ता है—जैव-विविधता और वन्यजीव गलियारों की रक्षा। अरावली को केवल "वन भूमि" मानना पर्याप्त नहीं है। इसमें जंगल, झाड़ीदार क्षेत्र, घासभूमियाँ, पथरीले प्राकृतिक आवास, आर्द्रभूमियाँ और अन्य प्राकृतिक आवास प्रकार शामिल हैं। इसलिए पुनर्स्थापन में केवल बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण करना समाधान नहीं है। कुछ अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में घास और झाड़ियाँ भी अत्यंत महत्वपूर्ण पारिस्थितिक घटक हैं। यदि हर खुले क्षेत्र को पेड़ों से भरने की कोशिश की जाए तो स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र की प्रकृति बदल सकती है। इसलिए स्थानीय प्रजातियों और स्थानीय पारिस्थितिक परिस्थितियों पर आधारित पुनर्स्थापन आवश्यक है।

सरकार की अरावली ग्रीन वॉल योजना इस दिशा में एक महत्वपूर्ण आधार उपलब्ध कराती है। पर्यावरण मंत्रालय की विस्तृत कार्ययोजना में अरावली बफर भूदृश्य को लगभग 64.5 लाख हेक्टेयर क्षेत्र के रूप में देखा गया है, जिसमें लगभग **27 लाख** हेक्टेयर क्षरित भूमि की पहचान की गई थी। योजना में क्षरित वनों, झाड़ीदार क्षेत्रों, कृषि भूमि, सामुदायिक भूमि तथा परित्यक्त या खनन से प्रभावित क्षेत्रों के पुनर्स्थापन की बात है। इसमें वन पुनर्स्थापन के साथ चारागाह भूमि और कृषि-वनीकरण को भी महत्व दिया गया है।

2025 में जारी विस्तृत कार्ययोजना ने **2025–2034 के चरणबद्ध पुनर्स्थापन ढाँचे** को आगे बढ़ाया। सरकारी आँकड़ों के अनुसार, अरावली ग्रीन वॉल पहल में लगभग 63.1 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में पुनर्स्थापन का प्रस्ताव है और 2025 में लगभग 36,025 हेक्टेयर क्षेत्र में पुनर्स्थापन कार्य की सूचना दी गई। चारों राज्यों के अरावली भूदृश्य

में 435 पौधशालाएँ स्थापित होने और उनकी संयुक्त क्षमता लगभग 393.24 लाख पौधों की बताई गई है।

लेकिन यहाँ सफलता की असली कसौटी पौधों की संख्या नहीं होनी चाहिए। किसी कार्यक्रम को सफल तब माना जाना चाहिए जब पाँच या दस वर्ष बाद यह दिखाई दे कि स्थानीय वनस्पति वापस आई, मिट्टी का कटाव कम हुआ, जल-चक्र बेहतर हुआ, वन्यजीव लौटे, जैव-विविधता बढ़ी और स्थानीय समुदाय को लाभ मिला। यदि लाखों पौधे लगाए जाएँ लेकिन उनमें से अधिकांश कुछ वर्षों में सूख जाएँ, तो केवल वृक्षारोपण की संख्या पर्यावरणीय सफलता का सही मापदंड नहीं होगी।

सरकार ने भी **अरावली ग्रीन वॉल** के लिए स्थानीय प्रजातियों, वन पुनर्स्थापन, घासभूमि के पुनर्जीवन और खनन क्षेत्रों के पुनर्वास को शामिल किया है। 2026 के सरकारी विवरण में 2025–2034 के चरणबद्ध पुनर्स्थापन कार्यक्रम को CAMPA, MGNREGS, ग्रीन इंडिया मिशन और अन्य कार्यक्रमों के साथ जोड़ने की बात कही गई है। यह समन्वय उपयोगी हो सकता है, क्योंकि अरावली का पुनर्स्थापन बहुत बड़ा कार्य है और इसके लिए विभिन्न योजनाओं तथा वित्तीय स्रोतों को एक साथ लाना आवश्यक होगा।

पाँचवाँ और शायद सबसे महत्वपूर्ण रास्ता है—जनभागीदारी।
अरावली को केवल वन विभाग या पुलिस नहीं बचा सकती। जिन गाँवों में लोग सदियों से पहाड़ियों, चरागाहों, तालाबों और जंगलों पर निर्भर रहे हैं, उन्हें संरक्षण के साझेदार के रूप में देखना होगा। स्थानीय समुदायों को यदि केवल "अतिक्रमणकारी" या "उपयोगकर्ता" समझा जाएगा तो संरक्षण और जनता के बीच दूरी बढ़ सकती है। लेकिन यदि उन्हें वन पुनर्स्थापन, जलग्रहण प्रबंधन, पौधशाला विकास, पारिस्थितिकी पर्यटन, घासभूमि प्रबंधन और निगरानी में रोजगार तथा जिम्मेदारी दी जाए, तो संरक्षण एक सामाजिक आंदोलन बन सकता है।

यही कारण है कि मई 2025 में केंद्र सरकार द्वारा जारी अरावली भूदृश्य पुनर्स्थापन कार्ययोजना ने "सम्पूर्ण सरकार" के साथ "सम्पूर्ण समाज" के दृष्टिकोण पर जोर दिया था। सरकार ने कहा था कि पुनर्स्थापन में जन-जागरूकता और जनभागीदारी महत्वपूर्ण हैं तथा स्थानीय समुदायों को शामिल करना आवश्यक है।

अरावली के गाँवों में स्थानीय संरक्षण समितियाँ बनाई जा सकती हैं, जिनका काम केवल पौधे लगाना न हो, बल्कि जलस्रोतों की निगरानी, अवैध खनन की सूचना देना, चरागाह संरक्षण, आग पर नियंत्रण और स्थानीय जैव-विविधता का दस्तावेजीकरण भी हो। ग्राम पंचायतों को पुनर्स्थापन निधि और पारिस्थितिक प्रदर्शन से जोड़ा जा

सकता है। इससे संरक्षण केवल सरकारी आदेश नहीं रहेगा, बल्कि स्थानीय शासन का हिस्सा बन जाएगा।

खनन मजदूरों के प्रश्न को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। यदि संरक्षण के नाम पर खनन बंद किया जाता है तो प्रभावित परिवारों के लिए वैकल्पिक रोजगार की योजना आवश्यक है। खदान श्रमिकों को पुनर्स्थापन गतिविधियों, खनन स्थलों के पुनर्वास, पौधशाला प्रबंधन, जलग्रहण कार्य और कौशल विकास में लगाया जा सकता है। इससे पर्यावरण संरक्षण और आजीविका के बीच टकराव कम किया जा सकता है। सुप्रीम कोर्ट की वर्तमान उच्चाधिकार प्राप्त समिति ने भी हितधारकों की सूची में खदान श्रमिकों और स्थानीय समुदायों को शामिल किया है।

छठा रास्ता है—शहरी विकास को अरावली की पारिस्थितिक वहन क्षमता के अनुरूप बनाना।

दिल्ली-एनसीआर और हरियाणा के अरावली क्षेत्रों में रियल एस्टेट का दबाव बहुत अधिक है। यदि हर खुली जमीन को विकास भूमि मान लिया जाए तो कुछ वर्षों में छोटे-छोटे प्राकृतिक आवासों के खंड भी समाप्त हो सकते हैं। इसलिए शहरी नियोजन में अरावली के पारिस्थितिक क्षेत्रों को स्पष्ट रूप से शामिल करना होगा। शहरों को अरावली के चारों ओर नहीं, बल्कि अरावली की पारिस्थितिक सीमाओं को ध्यान में रखते हुए विकसित करना होगा।

जहाँ विकास पहले से मौजूद है, वहाँ हरित अवसंरचना, वर्षाजल संचयन, जल-पारगम्य सतहों, शहरी वनों और प्राकृतिक जल-निकासी तंत्र के पुनर्स्थापन को बढ़ावा दिया जा सकता है। लेकिन प्राकृतिक अरावली भूदृश्य को "शहरी हरित पार्क" समझकर उसके स्थान पर केवल सजावटी पौधारोपण करना पर्याप्त नहीं होगा। प्राकृतिक भू-आकृति और स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र को यथासंभव सुरक्षित रखना ही प्राथमिकता होनी चाहिए।

सातवाँ रास्ता है—स्वतंत्र निगरानी और जवाबदेही।

किसी भी संरक्षण योजना की सफलता तभी होगी जब उसकी जाँच भी स्वतंत्र हो। प्रत्येक तीन वर्ष में उपग्रह-आधारित आकलन, भूजल निगरानी, जैव-विविधता सर्वेक्षण और पुनर्स्थापन ऑडिट होना चाहिए। यदि किसी खनन परियोजना ने पुनर्स्थापन का वादा किया है तो उसकी भूमि पर वास्तविक पुनर्स्थापन हुआ या नहीं, यह सार्वजनिक रूप से दर्ज होना चाहिए। पर्यावरणीय स्वीकृति की शर्तों के उल्लंघन पर केवल जुर्माना पर्याप्त नहीं; गंभीर मामलों में संचालन रोकना, पर्यावरणीय क्षतिपूर्ति और पुनर्स्थापन की जिम्मेदारी तय करना भी आवश्यक हो सकता है।

राष्ट्रीय हरित अधिकरण (NGT) इस पूरे ढाँचे में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। NGT को पर्यावरण संरक्षण, वनों और प्राकृतिक संसाधनों से जुड़े विवादों की विशेषज्ञता के साथ त्वरित निपटारे के लिए बनाया गया है। अरावली से जुड़े मामलों में अदालतों, NGT, राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों, वन विभागों और स्थानीय प्रशासन के बीच बेहतर **संस्थागत समन्वय** आवश्यक है।

आठवाँ रास्ता है—डेटा को जनता के लिए खोलना।
अरावली की संरक्षण व्यवस्था में एक सार्वजनिक GIS पोर्टल बनाया जा सकता है, जहाँ नागरिक किसी क्षेत्र का नक्शा देखकर यह समझ सकें कि वह वन है, वन्यजीव गलियारा है, पुनर्भरण क्षेत्र है, खनन लीज़ है या पुनर्स्थापन क्षेत्र। यदि किसी स्थान पर अचानक भूमि-उपयोग में बदलाव दिखाई दे तो नागरिक शिकायत दर्ज कर सकें और उसकी कार्रवाई को ऑनलाइन देख सकें। इससे पारदर्शिता और जनविश्वास दोनों बढ़ेंगे।

नौवाँ रास्ता है—जलवायु परिवर्तन को अरावली संरक्षण से जोड़ना।
आज संरक्षण का अर्थ केवल जैव-विविधता तक सीमित नहीं रह गया है। बढ़ती गर्मी, अनिश्चित वर्षा, सूखा, अचानक भारी वर्षा और भूजल दबाव के दौर में अरावली जलवायु लचीलेपन का महत्वपूर्ण आधार हो सकती है। 2026 के सरकारी कार्यक्रम में भी घासभूमियों और चारागाह क्षेत्रों को जैव-विविधता, पशुधन आधारित आजीविका, जल-चक्र नियमन, कार्बन अवशोषण और जलवायु लचीलेपन से जोड़ा गया है।
इसलिए अरावली पुनर्स्थापन की सफलता को जलवायु संकेतकों से भी मापा जाना चाहिए। क्या भूजल पुनर्भरण बढ़ा? क्या मृदा नमी बेहतर हुई? क्या सतही तापमान में स्थानीय कमी आई? क्या वनस्पति आवरण टिकाऊ हुआ? क्या धूल भरी आँधियों और मृदा अपरदन में कमी आई? क्या ग्रामीण आजीविका अधिक स्थिर हुई? ऐसे संकेतकों से ही पता चलेगा कि पुनर्स्थापन वास्तव में जलवायु अनुकूलन में मदद कर रहा है या नहीं।

दसवाँ और अंतिम रास्ता है—विकास और संरक्षण के बीच नया संतुलन।
अरावली को पूरी तरह मानव गतिविधियों से खाली कर देना संभव भी नहीं है और हर जगह खनन तथा निर्माण की अनुमति देना पर्यावरणीय रूप से सुरक्षित भी नहीं है। इसलिए क्षेत्र-निर्धारण (zoning) की जरूरत है। कुछ क्षेत्र पूर्णतः संरक्षण-आवश्यक क्षेत्र हों; कुछ पुनर्स्थापन क्षेत्र हों; कुछ सामुदायिक उपयोग वाले भूदृश्य हों; और केवल वैज्ञानिक परीक्षण के बाद सीमित सतत गतिविधियों वाले क्षेत्र निर्धारित किए जाएँ। ऐसी क्षेत्र-निर्धारण व्यवस्था की नियमित समीक्षा भी होनी चाहिए, क्योंकि पारिस्थितिक परिस्थितियाँ और जलवायु जोखिम समय के साथ बदल सकते हैं।

इस दृष्टि से सुप्रीम कोर्ट की वर्तमान उच्चाधिकार प्राप्त समिति एक महत्वपूर्ण अवसर है। 21 जुलाई 2026 को केंद्र सरकार ने समिति के सार्वजनिक परामर्श की जानकारी देते हुए कहा कि समिति को अरावली की पहाड़ियों और पर्वतमालाओं से जुड़े विषयों तथा अन्य संबद्ध मुद्दों की जाँच करके 31 अगस्त 2026 से पहले व्यापक रिपोर्ट देनी है। इसमें राज्यों के साथ पर्यावरणविदों, संरक्षणवादियों, गैर-सरकारी संगठनों (NGOs), खनन पट्टाधारकों, परियोजना प्रस्तावकों, ग्रामीणों, किसानों, खदान श्रमिकों और स्थानीय समुदायों से सुझाव माँगे गए हैं। यह प्रक्रिया यदि पारदर्शी और वैज्ञानिक तरीके से आगे बढ़ती है तो अरावली संरक्षण के लिए एक मजबूत आधार तैयार हो सकता है।

अगस्त 2026 में समिति का क्षेत्रीय सर्वेक्षण शुरू होना भी महत्वपूर्ण है। हाल की रिपोर्टों के अनुसार, सर्वेक्षण में असोला, मंगर बानी और जैव-विविधता पार्क जैसे क्षेत्रों को देखा जा रहा है और इसके बाद राजस्थान के विभिन्न हिस्सों का अध्ययन किया जा रहा है। इससे यह उम्मीद बनती है कि भविष्य की परिभाषा केवल डेस्क अध्ययन या पुराने मानचित्रों पर निर्भर नहीं रहेगी, बल्कि जमीन की वास्तविक परिस्थितियों को भी ध्यान में रखा जाएगा।

लेकिन इस पूरी प्रक्रिया में सबसे महत्वपूर्ण बात यह होगी कि संरक्षण की कसौटी केवल "कानूनी रूप से अरावली है या नहीं" तक सीमित न हो। यदि कोई क्षेत्र वैज्ञानिक रूप से अरावली भूदृश्य का महत्वपूर्ण पारिस्थितिक घटक है, तो उसे किसी न किसी प्रभावी संरक्षण तंत्र के तहत सुरक्षा मिलनी चाहिए। इसी तरह यदि कोई क्षेत्र विकास के लिए उपयुक्त है, तो वहाँ भी पर्यावरणीय सुरक्षा उपायों और पारिस्थितिक वहन क्षमता का पालन होना चाहिए।

अरावली को बचाने का अर्थ विकास रोकना नहीं है। इसका अर्थ है गलत जगह के विकास को रोकना, सही जगह पर नियंत्रित विकास करना और प्राकृतिक संसाधनों का ऐसा उपयोग करना जिससे भविष्य की पीढ़ियों के हिस्से का पानी, जंगल और जमीन समाप्त न हो।

यहाँ सुप्रीम कोर्ट द्वारा विकसित पर्यावरणीय न्यायशास्त्र एक मजबूत आधार प्रदान करता है। लोक न्यास सिद्धांत का अर्थ है कि प्राकृतिक संसाधन जनता के लिए हैं। सावधानी का सिद्धांत यह बताता है कि गंभीर पर्यावरणीय जोखिम की स्थिति में सावधानी को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। सतत विकास का अर्थ है कि विकास और पर्यावरण को एक-दूसरे का शत्रु नहीं, बल्कि दीर्घकालीन साझेदार समझा जाए। अनुच्छेद 21 के तहत स्वस्थ पर्यावरण के अधिकार को भी न्यायिक निर्णयों में महत्वपूर्ण स्थान मिला है।

इसलिए अरावली संरक्षण की अंतिम रणनीति को चार शब्दों में समझा जा सकता है—**कानून, विज्ञान, समाज और पुनर्स्थापन।** कानून सीमा तय करे और उल्लंघन रोके। विज्ञान यह बताए कि क्या बचाना है और क्यों बचाना है। समाज संरक्षण को जमीन पर लागू करे। और पुनर्स्थापन उन क्षेत्रों को वापस पारिस्थितिक स्वास्थ्य की ओर ले जाए, जिन्हें हम पहले ही नुकसान पहुँचा चुके हैं।

यदि केवल कानून होगा लेकिन उसका प्रभावी प्रवर्तन नहीं होगा, तो अरावली नहीं बचेगी। यदि केवल विज्ञान होगा लेकिन जनता शामिल नहीं होगी, तो संरक्षण टिकाऊ नहीं होगा। यदि केवल वृक्षारोपण होगा लेकिन खनन और भूमि क्षरण जारी रहेगा, तो पारिस्थितिक संतुलन वापस नहीं आएगा। और यदि केवल विकास होगा लेकिन पानी, मिट्टी और जैव-विविधता की कीमत नहीं गिनी जाएगी, तो वह विकास आने वाली पीढ़ियों के लिए संकट बन सकता है।

अरावली ग्रीन वॉल जैसी योजनाएँ इस बड़े प्रयास का महत्वपूर्ण हिस्सा बन सकती हैं। सरकार ने 2025–2034 के लिए भूदृश्य पुनर्स्थापन, घासभूमि पुनर्जीवन और खनन क्षेत्रों के पुनर्वास को जोड़ते हुए चरणबद्ध योजना तैयार की है। लेकिन अब जरूरत इस योजना को मापनीय परिणामों से जोड़ने की है। हर जिले के लिए पुनर्स्थापन लक्ष्य के साथ भूजल, जैव-विविधता, वनस्पति के टिकाऊ विकास और आजीविका से जुड़े संकेतक तय किए जाएँ। तभी यह पता चलेगा कि धन और प्रयास वास्तव में जमीन पर कितना परिवर्तन ला रहे हैं।

अरावली की रक्षा में एक और बात अत्यंत महत्वपूर्ण है—प्राकृतिक पारिस्थितिकी को पुनर्जीवित करना, केवल हरित रंग देना नहीं। यदि किसी पहाड़ी पर स्थानीय प्राकृतिक वनस्पति की जगह केवल तेजी से बढ़ने वाले पेड़ लगा दिए गए, यदि घासभूमि को जंगल मान लिया गया, यदि प्राकृतिक जल-निकासी को कंक्रीट नाले में बदल दिया गया या यदि पुराने खनन गड्ढों को बिना पारिस्थितिक आकलन के भर दिया गया, तो क्षेत्र बाहर से हरा दिखाई दे सकता है, लेकिन उसकी प्राकृतिक कार्यप्रणाली वापस नहीं आएगी। पुनर्स्थापन का लक्ष्य भूदृश्य के पारिस्थितिक कार्य को वापस लाना होना चाहिए।

इसलिए भविष्य की अरावली नीति में “कितने पेड़ लगाए गए” से अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न होना चाहिए—**कितना प्राकृतिक आवास बचा, कितनी क्षरित भूमि का पुनर्स्थापन हुआ, कितना भूजल पुनर्भरण सुधरा, कितने वन्यजीव गलियारे जुड़े, कितनी स्थानीय प्रजातियाँ वापस आईं और कितने स्थानीय परिवारों की आजीविका मजबूत हुई।**

अंततः अरावली को बचाने का सबसे प्रभावी रास्ता किसी एक संस्था के हाथ में नहीं है। केंद्र सरकार नीति और वित्तीय संसाधन उपलब्ध करा सकती है। राज्य सरकारें भूमि और प्रशासनिक व्यवस्था संभाल सकती हैं। भारतीय वन सर्वेक्षण और अन्य वैज्ञानिक संस्थान मानचित्रण कर सकते हैं। विश्वविद्यालय और शोध संस्थान पारिस्थितिक निगरानी कर सकते हैं। न्यायपालिका कानून के पालन और सार्वजनिक हित की रक्षा कर सकती है। लेकिन जमीन पर अंतिम सफलता तभी मिलेगी, जब स्थानीय समुदाय स्वयं अरावली को अपना संसाधन और अपनी सुरक्षा-कवच मानेंगे।

अरावली को बचाने की लड़ाई इसलिए अदालत बनाम सरकार की लड़ाई नहीं होनी चाहिए। यह विकास बनाम पर्यावरण की लड़ाई भी नहीं होनी चाहिए। यह अल्पकालिक लाभ और दीर्घकालिक सार्वजनिक हित के बीच सही संतुलन चुनने की प्रक्रिया होनी चाहिए।

आज जब सर्वोच्च न्यायालय की विशेषज्ञ समिति अरावली की वैज्ञानिक, भौगोलिक और कानूनी पहचान पर अपना अध्ययन कर रही है, तब देश के सामने एक अत्यंत महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक अवसर है। यदि इस प्रक्रिया में वैज्ञानिक प्रमाण, उपग्रह-आधारित मानचित्रण, जल-विज्ञान, जैव-विविधता, जलवायु जोखिम, स्थानीय पारंपरिक ज्ञान और आजीविका जैसे सभी पहलुओं को समग्र दृष्टिकोण के साथ सामने रखा जाता है, तो अरावली के संरक्षण के लिए ऐसी वैज्ञानिक, पारदर्शी और दीर्घकालीन व्यवस्था विकसित की जा सकती है, जो आने वाले दशकों तक प्रभावी और टिकाऊ बनी रहे। इसके विपरीत, यदि निर्णय केवल किसी एक संख्या, एक विभागीय दृष्टिकोण, सीमित तकनीकी परिभाषा या किसी एक परियोजना के आधार पर लिया गया, तो भविष्य में फिर से कानूनी, पर्यावरणीय और सामाजिक विवाद उत्पन्न हो सकते हैं।

इसलिए आवश्यक है कि अरावली की पहचान केवल उसके भू-आकृतिक स्वरूप या ऊँचाई के आधार पर न की जाए, बल्कि उसके व्यापक पारिस्थितिक कार्यों और उनसे जुड़ी प्राकृतिक प्रक्रियाओं को भी समान महत्व दिया जाए। अरावली की वास्तविक सीमा वही नहीं है जो किसी नक्शे पर दिखाई देती है; उसका प्रभाव उन जलग्रहण क्षेत्रों, वनों, मिट्टी, भूजल प्रणालियों, वन्यजीव आवासों और मानव बस्तियों तक फैला है, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस पर्वत-तंत्र पर निर्भर हैं। इसलिए भविष्य की किसी भी संरक्षण व्यवस्था में इस व्यापक पारिस्थितिक संबंध को समझना और सुरक्षित रखना आवश्यक होगा।

अरावली को बचाने का अंतिम लक्ष्य इसलिए केवल यह नहीं होना चाहिए कि "*अरावली की पहाड़ियाँ न काटी जाएँ।*" उससे कहीं आगे जाकर वास्तविक लक्ष्य यह होना चाहिए कि *अरावली का पूरा पारिस्थितिक तंत्र जीवित, सक्रिय और स्वस्थ बना रहे।* उसकी पहाड़ियाँ सुरक्षित रहें, उसके प्राकृतिक वन और झाड़ीदार क्षेत्र बने रहें, उसकी घासभूमियाँ संरक्षित रहें, उसके जलस्रोत और पारंपरिक जल-प्रणालियाँ जीवित रहें, उसके वन्यजीव गलियारे खुले और सुरक्षित रहें, उसकी उपजाऊ मिट्टी का क्षरण न हो, उसका भूजल पुनर्भरण बना रहे तथा उसके आसपास रहने वाले ग्रामीणों, किसानों, पशुपालकों और अन्य स्थानीय समुदायों की आजीविका भी सुरक्षित रहे। यही वास्तविक और समग्र संरक्षण है।

किसी पर्वत-तंत्र का संरक्षण केवल उसके पत्थरों और ऊँचाई को बचाने से नहीं होता। उसकी वास्तविक पहचान उन प्राकृतिक सेवाओं से होती है, जो वह समाज और पर्यावरण को निरंतर प्रदान करता है। अरावली वर्षाजल के संचयन, भूजल पुनर्भरण, मृदा संरक्षण, जैव-विविधता, वन्यजीव आवागमन, स्थानीय जलवायु संतुलन और अनेक समुदायों की आजीविका में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसलिए इसके किसी एक घटक का गंभीर क्षरण भी पूरे पारिस्थितिक संतुलन को प्रभावित कर सकता है। यही कारण है कि संरक्षण की दृष्टि पूरे भूदृश्य और संपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र पर आधारित होनी चाहिए, न कि केवल अलग-अलग पहाड़ियों या छोटे-छोटे भूखंडों पर।

और यही इस पुस्तक की पूरी यात्रा का मूल निष्कर्ष भी है—अरावली को बचाना केवल पहाड़ बचाना नहीं है; यह जल बचाना, जंगल बचाना, मिट्टी बचाना, जैव-विविधता बचाना, भूजल बचाना और अंततः मानव जीवन को सुरक्षित रखना है। यदि अरावली का प्राकृतिक तंत्र मजबूत रहेगा, तो उससे जुड़े अनेक पारिस्थितिकीय और सामाजिक लाभ भी लंबे समय तक बने रहेंगे। इसलिए अरावली संरक्षण को पर्यावरणीय नीति के साथ-साथ जल-सुरक्षा, खाद्य-सुरक्षा, जलवायु अनुकूलन और सतत आजीविका की व्यापक रणनीति से जोड़ना आवश्यक है।

अरावली को बचाने के लिए हमें उसे केवल पहाड़ के रूप में नहीं, बल्कि जल, जंगल, जमीन, जैव-विविधता, जलवायु और मानव जीवन को जोड़ने वाली एक व्यापक प्राकृतिक जीवन-व्यवस्था के रूप में देखना होगा। इस व्यवस्था के प्रत्येक घटक का अपना महत्व है और ये सभी एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। पहाड़ सुरक्षित होंगे तो जलग्रहण क्षेत्र मजबूत रहेंगे; वन और झाड़ीदार क्षेत्र सुरक्षित होंगे तो मिट्टी और जैव-विविधता संरक्षित रहेगी; जलस्रोत और भूजल पुनर्भरण बने रहेंगे तो स्थानीय कृषि और आजीविका को आधार मिलेगा; और जब स्थानीय समुदायों को संरक्षण से लाभ मिलेगा, तो वे स्वयं इस प्राकृतिक विरासत के सबसे मजबूत प्रहरी बन सकते हैं।

इसीलिए **कानून** उसकी ढाल बने, विज्ञान उसकी आँख बने, जनता उसकी शक्ति बने और पुनर्स्थापन उसका उपचार बने। कानून अवैध खनन, अंधाधुंध निर्माण और विनाशकारी गतिविधियों से अरावली की रक्षा करे; विज्ञान उसके प्रत्येक निर्णय को प्रमाण और तथ्यों का आधार दे; स्थानीय जनता संरक्षण की प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार बने; और जहाँ पारिस्थितिकी क्षतिग्रस्त हो चुकी है, वहाँ वैज्ञानिक पुनर्स्थापन और पारिस्थितिक पुनर्वास के माध्यम से उसे पुनर्जीवित किया जाए।

यदि इन चारों शक्तियों—कानून, विज्ञान, जनभागीदारी और पुनर्स्थापन—का समन्वय स्थापित हो सके, तो अरावली का संरक्षण केवल वर्तमान संकट का समाधान नहीं होगा, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए एक दीर्घकालीन प्राकृतिक सुरक्षा-व्यवस्था तैयार करेगा। तब अरावली केवल इतिहास की एक प्राचीन पर्वत-श्रृंखला नहीं रहेगी, बल्कि भारत की जीवित प्राकृतिक सुरक्षा-कवच, जल-सुरक्षा की आधारशिला और जीवन-रेखा बनी रहेगी। यही अरावली के संरक्षण का व्यापक उद्देश्य है और यही भविष्य के भारत के प्रति हमारी सबसे महत्वपूर्ण पर्यावरणीय जिम्मेदारी भी है तथा अरावली को बचाने के लिए हमें उसे केवल पहाड़ के रूप में नहीं, बल्कि जल, जंगल, जमीन, जैव-विविधता, जलवायु और मानव जीवन को जोड़ने वाली एक प्राकृतिक जीवन-व्यवस्था के रूप में देखना होगा।

कानून उसकी ढाल बने, विज्ञान उसकी आंख बने, जनता उसकी शक्ति बने और restoration उसका उपचार बने। तभी अरावली आने वाली पीढ़ियों के लिए केवल इतिहास की एक प्राचीन पर्वत-श्रृंखला नहीं, बल्कि भारत की जीवित **प्राकृतिक सुरक्षा-कवच और जीवन-रेखा** बनी रह सकेगी।

9.
अरावली का भविष्य — संरक्षण से पुनर्जीवन तक एक ठोस कार्ययोजना

अरावली का भविष्य केवल इस बात पर निर्भर नहीं करेगा कि आने वाले समय में अदालत इसकी सीमा किस प्रकार निर्धारित करती है या सरकार किस क्षेत्र को अरावली की श्रेणी में रखती है। असली प्रश्न इससे कहीं बड़ा है। प्रश्न यह है कि क्या हम अरावली को केवल बची हुई पहाड़ियों के रूप में संरक्षित करना चाहते हैं, या फिर उसे एक ऐसे जीवित पारिस्थितिक तंत्र के रूप में पुनर्जीवित करना चाहते हैं जो पानी, मिट्टी, वनस्पति, जैव-विविधता, जलवायु और मानव जीवन को लगातार सहारा देता रहे। पिछले वर्षों में हुई न्यायिक बहस ने अरावली की कानूनी पहचान का प्रश्न सामने रखा है, लेकिन अब समय केवल परिभाषा तय करने का नहीं, बल्कि **एक ऐसी दीर्घकालीन कार्ययोजना बनाने का है जिसमें संरक्षण, पुनर्स्थापन और स्थानीय आजीविका एक साथ चलें।**

अरावली के सामने आज जो चुनौती है, वह किसी एक समस्या का परिणाम नहीं है। कहीं अवैध खनन ने पहाड़ियों को काटा है, कहीं वैध गतिविधियों का दबाव बढ़ा है, कहीं जंगल और झाड़ीदार भूमि का क्षरण हुआ है, कहीं प्राकृतिक जलधाराएं और भूजल पुनर्भरण क्षेत्र प्रभावित हुए हैं, तो कहीं तेजी से बढ़ते शहरों ने पहाड़ियों और उनके आसपास की भूमि पर दबाव बढ़ाया है। इसलिए अरावली को बचाने के लिए भी एक ही उपाय पर्याप्त नहीं होगा। पौधे लगाना जरूरी है, लेकिन केवल पौधे लगाना पर्याप्त नहीं है। खनन पर नियंत्रण जरूरी है, लेकिन केवल खनन रोकना भी पर्याप्त नहीं है। कानून जरूरी है, लेकिन कानून के साथ वैज्ञानिक निगरानी और स्थानीय समुदाय की भागीदारी भी जरूरी है।

इसी व्यापक सोच की आवश्यकता को 20 नवम्बर 2025 के सुप्रीम कोर्ट के निर्णय में भी देखा जा सकता है। अदालत ने अरावली को केवल खनन विनियमन के एक छोटे विषय के रूप में नहीं देखा, बल्कि पूरे गुजरात से दिल्ली तक फैली निरंतर भूवैज्ञानिक पर्वत-श्रेणी (Continuous Geological Ridge) के लिए सतत खनन हेतु प्रबंधन योजना (MPSM) तैयार करने का निर्देश दिया। अदालत ने कहा कि इस योजना में अनुमेय (Permissible} खनन क्षेत्रों के साथ-साथ पारिस्थितिक रूप से संवेदनशील क्षेत्रों, संरक्षण की दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्रों तथा पुनर्स्थापना-प्राथमिकता वाले क्षेत्रों की पहचान की जानी चाहिए। साथ ही, योजना बनाते समय समग्र

पर्यावरणीय प्रभावों, पारिस्थितिक वहन-क्षमता और खनन के बाद भूमि एवं पारिस्थितिकी तंत्र के पुनर्स्थापन को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

बाद की न्यायिक घटनाओं ने यह स्पष्ट कर दिया कि अरावली की अंतिम परिभाषा का प्रश्न अभी समाप्त नहीं हुआ है। 29 दिसम्बर 2025 को सुप्रीम कोर्ट ने 20 नवम्बर के अपने निर्देशों तथा समिति की सिफारिशों को आगे के आदेश तक स्थगन में रखा और स्वतंत्र विशेषज्ञ समीक्षा की आवश्यकता बताई। अदालत के सामने यह महत्वपूर्ण प्रश्न था कि प्रस्तावित परिभाषा से क्या कुछ महत्वपूर्ण भू-भाग संरक्षण के दायरे से बाहर हो सकते हैं और क्या नियंत्रित खनन का दायरा अनजाने में बढ़ सकता है। इसके बाद 25 मई 2026 को सुप्रीम कोर्ट ने पांच सदस्यीय उच्चाधिकार प्राप्त समिति गठित करने का निर्देश दिया और कहा कि अरावली की भूवैज्ञानिक तथा मृदा संबंधी विशेषताएँ, जैव-विविधता, वनस्पति एवं जीव-जंतु, खनिज संपदा, प्राकृतिक संसाधन तथा वैज्ञानिक भू-मानचित्रण जैसे सभी पहलुओं का व्यापक मूल्यांकन आवश्यक है।
इसलिए अगस्त 2026 में अरावली के संरक्षण की कार्ययोजना बनाते समय सबसे पहला सिद्धांत यही होना चाहिए कि कानूनी सीमा और पारिस्थितिक सीमा को एक ही चीज न माना जाए। अदालत और विशेषज्ञ समिति जिस अंतिम व्यवस्था तक पहुंचेंगे, वह महत्वपूर्ण होगी, लेकिन उसके साथ-साथ पूरे परिदृश्य के पारिस्थितिकीय कार्य को संरक्षित करने की आवश्यकता बनी रहेगी।

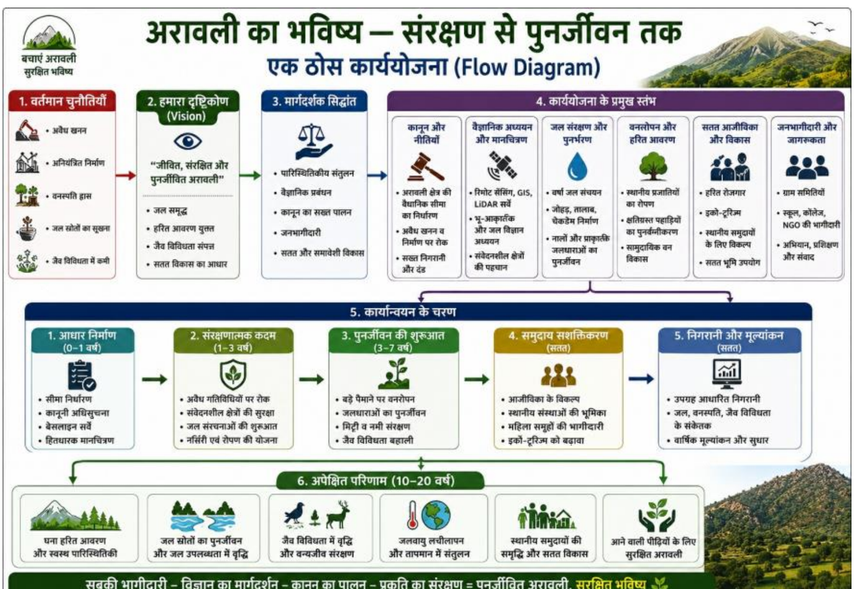

चित्र 9.1: अरावली का भविष्य –एक ठोस कार्य योजना

अरावली के भविष्य की पहली प्राथमिकता होनी चाहिए—**एक वैज्ञानिक और सार्वजनिक अरावली मानचित्र।** अभी तक की बहस ने यह दिखा दिया है कि किसी पर्वत-श्रृंखला की सीमा निर्धारित करना केवल नक्शे पर रेखा खींचने का काम नहीं है। ऊंचाई, स्थानीय भू-आकृति, ढाल, भूविज्ञान, वनस्पति, जल-निकास तंत्र, भूजल पुनर्भरण, जैव-विविधता तथा भूमि उपयोग को एक साथ देखना होगा। सुप्रीम कोर्ट ने 25 मई 2026 के आदेश में भी वैज्ञानिक और सटीक भू-मानचित्रण को इस पूरी प्रक्रिया का आवश्यक हिस्सा माना है।

इसलिए अगले चरण में पूरे अरावली अरावली परिदृश्य का उच्च-रिज़ॉल्यूशन पारिस्थितिकीय एटलस बनाया जाना चाहिए। इसमें प्रत्येक क्षेत्र के लिए कम से कम छह स्तरों की जानकारी होनी चाहिए। पहला स्तर भूगर्भीय संरचना का हो, दूसरा स्थलाकृति और समुद्र तल से ऊँचाई का, तीसरा ढाल एवं जल-निकास तंत्र का, चौथा वनस्पति एवं प्राकृतिक आवास का, पांचवां भूजल और जलग्रहण क्षेत्र का तथा छठा मानव गतिविधियों—जैसे खनन, सड़कें, निर्माण, कृषि तथा बस्तियाँ —का। इस एटलस को उपग्रह चित्रण, डिजिटल ऊँचाई मॉडल, क्षेत्रीय सर्वेक्षण, भौगोलिक सूचना प्रणाली (GIS) तथा ड्रोन-आधारित मानचित्रण और वैज्ञानिक संस्थानों के आँकड़े से तैयार किया जा सकता है। इसका सबसे महत्वपूर्ण गुण यह होना चाहिए कि यह केवल सरकारी कार्यालयों में बंद दस्तावेज न रहे, बल्कि सार्वजनिक डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म पर उपलब्ध हो।

इस मानचित्र का दूसरा उद्देश्य होना चाहिए अरावली का पारिस्थितिक क्षेत्रीकरण**।** पूरे भूदृश्य को एक ही नियम से नियंत्रित करना व्यावहारिक नहीं होगा। कुछ क्षेत्र इतने संवेदनशील हो सकते हैं कि वहाँ किसी भी प्रकार के खनन या बड़े निर्माण की अनुमति न हो। कुछ क्षेत्र क्षरित हो सकते हैं, जहाँ पुनर्स्थापन सर्वोच्च प्राथमिकता हो। कुछ क्षेत्रों में सामुदायिक उपयोग, चराई और सतत आजीविका संबंधी गतिविधियों को नियंत्रित तरीके से जारी रखा जा सकता है। कुछ क्षेत्रों में पहले से मौजूद विकास को बेहतर पर्यावरणीय मानकों के साथ व्यवस्थित किया जा सकता है। इस तरह अरावली को कम से कम **चार प्रमुख श्रेणियों** में देखा जा सकता है—**संरक्षण-आवश्यक क्षेत्र, पुनर्स्थापन क्षेत्र, सामुदायिक पारिस्थितिक क्षेत्र और विनियमित उपयोग क्षेत्र।**

ऐसी क्षेत्रीकरण व्यवस्था का सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि संरक्षण और विकास के बीच बहस अधिक स्पष्ट हो जाएगी। अभी अक्सर प्रश्न यह बन जाता है कि "अरावली है या नहीं?" भविष्य में प्रश्न होना चाहिए—**"**यह क्षेत्र पारिस्थितिक दृष्टि से कितना संवेदनशील है और इसके लिए कौन-सा भूमि-उपयोग सबसे उपयुक्त है?" इससे

केवल 100 मीटर जैसी एक कसौटी पर निर्भरता कम होगी और निर्णय अधिक वैज्ञानिक बन सकेगा।

अरावली की **दूसरी बड़ी प्राथमिकता** होनी चाहिए अवैध खनन का पूर्ण नियंत्रण और वैध खनन का वैज्ञानिक नियमन। यह समझना जरूरी है कि हर खनन गतिविधि को एक ही श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। जहाँ पारिस्थितिक क्षति अत्यधिक है, वहाँ खनन का पूर्ण निषेध आवश्यक हो सकता है। जहाँ गतिविधि की अनुमति संभव है, वहाँ संचयी प्रभाव, भूजल, जैव-विविधता, धूल, विस्फोट और परिवहन के संयुक्त प्रभावों का मूल्यांकन होना चाहिए। किसी एक खदान को अलग-थलग परियोजना की तरह देखने के बजाय पूरे खनन समूह को एक पारिस्थितिक इकाई मानना अधिक उचित होगा।

20 नवम्बर 2025 के सुप्रीम कोर्ट के निर्देश में भी संचयी पर्यावरणीय प्रभावों और पारिस्थितिक वहन क्षमता को सतत खनन प्रबंधन योजना (MPSM) का हिस्सा बनाने की बात कही गई थी। अदालत ने खनन के बाद पुनर्स्थापन और पुनर्वास को भी स्पष्ट रूप से आवश्यक माना। इसका अर्थ है कि भविष्य में खनन की अनुमति को केवल खनिज निष्कर्षण की अनुमति नहीं, बल्कि "निष्कर्षण के साथ पुनर्स्थापन की जिम्मेदारी" के रूप में देखा जाना चाहिए।

हर खनन पट्टे के साथ एक स्पष्ट पुनर्स्थापन योजना होना चाहिए। उसमें यह बताया जाए कि खनन समाप्त होने के बाद भूमि की ढाल को किस प्रकार सुधारा जाएगा, मिट्टी की ऊपरी उपजाऊ परत को कैसे सुरक्षित रखा जाएगा, जल-निकासी तंत्र को कैसे बहाल किया जाएगा, स्थानीय प्राकृतिक वनस्पति को किस प्रकार पुनर्स्थापित किया जाएगा और भूजल पर पड़े प्रभाव को कैसे कम किया जाएगा। पुनर्स्थापन की लागत पहले से वित्तीय सुरक्षा के रूप में सुनिश्चित की जा सकती है, ताकि खनन समाप्त होने के बाद इसकी जिम्मेदारी सरकार पर न आ जाए।

तीसरी प्राथमिकता होनी चाहिए—क्षतिग्रस्त अरावली का पुनर्जीवन। यही वह क्षेत्र है जहाँ संरक्षण से आगे बढ़कर "पुनर्स्थापन" की वास्तविक अवधारणा लागू होती है। संरक्षण का अर्थ है जो बचा है उसे बचाना; जबकि पुनर्जीवन का अर्थ है जो नष्ट हो चुका है, उसके पारिस्थितिक कार्यों को वापस लाने का प्रयास करना। अरावली के लिए दोनों की आवश्यकता है।

केंद्र सरकार की अरावली ग्रीन वॉल पहल इस दिशा में पहले से एक महत्वपूर्ण आधार देती है। विस्तृत कार्ययोजना के अनुसार 2025–2034 के लिए चरणबद्ध पुनर्स्थापन कार्यक्रम तैयार किया गया है, जिसमें वन पुनर्स्थापन, घासभूमि पुनर्जीवन

और खनन क्षेत्रों के पुनर्वास को CAMPA, MGNREGS, ग्रीन इंडिया मिशन तथा अन्य कार्यक्रमों के साथ जोड़ने की योजना है। सरकार ने 63.1 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में पुनर्स्थापन का लक्ष्य प्रस्तावित किया है। 2025 में लगभग 36,025 हेक्टेयर क्षेत्र में पुनर्स्थापन कार्य की सूचना दी गई और चार राज्यों के अरावली भूदृश्य में 435 पौधशालाएँ स्थापित होने की बात कही गई, जिनकी संयुक्त अनुमानित क्षमता लगभग 393.24 लाख पौधों की है।

यह एक बड़ा कार्यक्रम है, लेकिन इसकी सफलता केवल संख्याओं से नहीं मापी जानी चाहिए। यदि 10 लाख पौधे लगाए गए और पाँच वर्ष बाद उनमें से अधिकांश जीवित नहीं रहे, तो कागज पर वृक्षारोपण सफल दिखाई दे सकता है, लेकिन पारिस्थितिकी की दृष्टि से नहीं। इसलिए अरावली पुनर्स्थापन का नया मापदंड होना चाहिए—जीवित रहने की दर, जैव-विविधता और पारिस्थितिक कार्य।

हर पुनर्स्थापन स्थल के लिए कम से कम पाँच से दस वर्ष की निगरानी अवधि होनी चाहिए। वहाँ स्थानीय प्राकृतिक वनस्पति की जीवित रहने की दर, मृदा नमी, मृदा अपरदन, भूजल पुनर्भरण, जैव-विविधता और कार्बन संचयन जैसे संकेतकों को मापा जाए। यदि किसी क्षेत्र में वृक्षारोपण सफल नहीं हो रहा है, तो उसी तकनीक को बार-बार दोहराने के बजाय उसके कारणों का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाए।

यहाँ एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है—**अरावली को केवल पेड़ों से नहीं, बल्कि उसके पूरे पारिस्थितिक तंत्र को पुनर्जीवित करके बचाना होगा।** कुछ क्षेत्रों में प्राकृतिक घासभूमियाँ और झाड़ीदार वनस्पति अधिक महत्वपूर्ण हो सकती हैं। इसलिए हर क्षरित भूमि को घने वन में बदलना सही पुनर्स्थापन नहीं होगा। स्थानीय पारिस्थितिक परिस्थितियों के अनुरूप स्थानीय प्रजातियों के वृक्षों, झाड़ियों, घासों और अन्य वनस्पतियों का संतुलित मिश्रण विकसित करना चाहिए। इस दिशा में सरकार की विस्तृत अरावली कार्ययोजना में वन पुनर्स्थापन के साथ घासभूमि पुनर्जीवन और खनन क्षेत्रों के पुनर्वास को भी शामिल किया गया है।

अरावली के पुनर्जीवन की **चौथी प्राथमिकता** होनी चाहिए—**जल सुरक्षा।** यदि अरावली की पारिस्थितिक भूमिकाओं को एक शब्द में समझना हो, तो "पानी" उनमें सबसे महत्वपूर्ण है। पहाड़ियों की ढाल, चट्टानी संरचना, मृदा आवरण और वनस्पति मिलकर वर्षाजल के प्रवाह, जल के अंतःस्रवण और भूजल पुनर्भरण को प्रभावित करते हैं। इसलिए अरावली का पुनर्स्थापन जलागम पुनर्स्थापन से अलग नहीं किया जा सकता।

हर अरावली जिले के लिए जलागम पुनर्स्थापन योजना बनाई जानी चाहिए। इसमें प्राकृतिक जल-निकासी रेखाओं की पहचान, पुराने तालाबों और जोहड़ों का

पुनर्जीवन, क्षरित जलग्रहण क्षेत्रों का उपचार, समोच्च रेखा-आधारित मृदा एवं जल संरक्षण, चेक डैम और भूजल पुनर्भरण संरचनाओं का वैज्ञानिक उपयोग शामिल हो सकता है। जहाँ खनन ने प्राकृतिक जल-निकासी तंत्र को बदल दिया है, वहाँ जलवैज्ञानिक पुनर्स्थापन को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

इसका एक और लाभ होगा—ग्रामीण और शहरी, दोनों क्षेत्रों में जल सुरक्षा बढ़ेगी। लेकिन यहाँ सावधानी जरूरी है। हर जगह कंक्रीट संरचनाएँ बना देना जलागम प्रबंधन नहीं है। जहाँ प्राकृतिक रूप से जल का अंतःस्रवण और भूजल पुनर्भरण संभव है, वहाँ प्राकृतिक पुनर्भरण प्रक्रियाओं को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। जल संरक्षण का उद्देश्य केवल वर्षाजल को रोकना नहीं, बल्कि पूरे जलचक्र को पुनर्जीवित करना होना चाहिए।

पाँचवीं प्राथमिकता होगी—अरावली के **वन्यजीव गलियारों और जैव-विविधता** के महत्वपूर्ण क्षेत्रों को जोड़ना**।** अरावली का कोई भी हिस्सा केवल इसलिए कम महत्वपूर्ण नहीं हो जाता कि वहाँ घना जंगल नहीं है। झाड़ीदार क्षेत्र, घासभूमियाँ, पथरीले प्राकृतिक आवास और छोटे वन-खंड भी वन्यजीवों के आवागमन के लिए महत्वपूर्ण हो सकते हैं। इसलिए भविष्य के पारिस्थितिक क्षेत्रीकरण में वन्यजीव आवागमन और प्राकृतिक आवासों की संपर्कता को स्वतंत्र मानदंड बनाया जाना चाहिए।

जहाँ सड़कें, दीवारें, खनन और निर्माण के कारण पारिस्थितिक गलियारे टूट गए हैं, वहाँ पुनर्स्थापन के साथ संपर्कता पुनर्स्थापन की योजना होनी चाहिए। यदि दो महत्वपूर्ण प्राकृतिक आवासों के बीच कोई प्राकृतिक गलियारा है, तो उसके बीच नए विकास की अनुमति देने से पहले भूदृश्य-स्तरीय प्रभाव आकलन होना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर पारिस्थितिक ऊपरी मार्ग, भूमिगत मार्ग या अन्य स्थल-विशिष्ट उपायों का उपयोग किया जा सकता है।

छठी प्राथमिकता है—स्थानीय समुदाय को संरक्षण का **मालिकाना भाव** देना। अरावली को सरकारी संपत्ति मानकर केवल विभागीय नियंत्रण के माध्यम से नहीं बचाया जा सकता। जिन गाँवों में लोग चराई, कृषि, वन संसाधनों और जलस्रोतों पर निर्भर हैं, उनकी भूमिका संरक्षण में केंद्रीय होनी चाहिए। मई 2025 में केंद्र द्वारा जारी अरावली पुनर्स्थापन कार्ययोजना को भी विज्ञान-आधारित, समुदाय-नेतृत्व वाले और नीतिगत समर्थन से संचालित दृष्टिकोण के रूप में प्रस्तुत किया गया था।

इस दिशा में ग्राम पंचायतों और स्थानीय संस्थाओं को पुनर्स्थापन परियोजनाओं में औपचारिक भूमिका दी जा सकती है। गाँव की पारिस्थितिक समिति यह निगरानी

कर सकती है कि कौन-से जलस्रोत खराब हो रहे हैं, कहाँ अवैध खनन की गतिविधि दिखाई दे रही है, कौन-से पौधे जीवित हैं, कहाँ चराई का दबाव अधिक है और किन क्षेत्रों को उपचार की आवश्यकता है। इससे स्थानीय ज्ञान सरकारी वैज्ञानिक आँकड़ों के साथ जुड़ सकता है।

लेकिन जनभागीदारी तभी प्रभावी होगी, जब उससे रोजगार और आजीविका भी जुड़ी हो। पुनर्स्थापन को स्थानीय रोजगार कार्यक्रम के रूप में विकसित किया जा सकता है। पौधशाला प्रबंधन, स्थानीय बीजों का संग्रह, जलागम कार्य, मृदा संरक्षण, अग्नि प्रबंधन, पारिस्थितिक निगरानी और प्राकृतिक आवासों के पुनर्स्थापन में स्थानीय युवाओं और महिलाओं को प्रशिक्षण दिया जा सकता है। खनन से प्रभावित परिवारों के लिए खनन क्षेत्रों का पुनर्वास और पारिस्थितिक पुनर्स्थापन वैकल्पिक रोजगार का स्रोत बन सकता है।

सातवीं प्राथमिकता होगी—**खनन से प्रभावित श्रमिकों के लिए न्यायपूर्ण संक्रमण।** यदि पर्यावरण संरक्षण के कारण कुछ खनन गतिविधियाँ बंद होती हैं, तो केवल खनन पट्टा बंद कर देना पर्याप्त नहीं है। हजारों परिवारों की आय प्रभावित हो सकती है। इसलिए प्रत्येक उच्च-जोखिम वाले खनन क्षेत्र के लिए "न्यायपूर्ण संक्रमण योजना" होनी चाहिए। इसमें कौशल विकास, पुनर्स्थापन आधारित रोजगार, लघु उद्यम, पशुधन विकास, कृषि-वनीकरण, पौधशाला कार्य और अन्य स्थानीय रोजगार के अवसर शामिल किए जा सकते हैं।
इससे एक महत्वपूर्ण संदेश जाएगा कि अरावली संरक्षण का अर्थ स्थानीय लोगों के विरुद्ध संरक्षण नहीं है। बल्कि संरक्षण का उद्देश्य यह होना चाहिए कि पहाड़ी बचे और उसके साथ रहने वाला समाज भी सुरक्षित रहे।

आठवीं प्राथमिकता होगी—**डिजिटल और उपग्रह-आधारित निगरानी।** अरावली का क्षेत्र बहुत बड़ा है। हर पहाड़ी पर अधिकारियों द्वारा रोजाना निगरानी संभव नहीं है। लेकिन उपग्रह चित्रों, GIS और दूरसंवेदी तकनीक की मदद से भूमि-उपयोग में होने वाले बदलावों का नियमित पता लगाया जा सकता है। यदि किसी क्षेत्र में अचानक नई सड़क, खनन गड्ढा या वनस्पति आवरण में कमी दिखाई देती है, तो उसके बाद स्थल-स्तरीय सत्यापन किया जा सकता है।

इसके लिए एक "अरावली पर्यावरणीय निगरानी पोर्टल" बनाया जा सकता है। इस पोर्टल पर खनन पट्टों, पर्यावरणीय स्वीकृतियों, वन सीमाओं, पुनर्स्थापन स्थलों, जलस्रोतों और पारिस्थितिक क्षेत्रों की जानकारी उपलब्ध कराई जाए। नागरिक किसी संदिग्ध गतिविधि की भौगोलिक-स्थानांकित शिकायत दर्ज कर सकें और उसकी कार्रवाई की स्थिति भी देख सकें। इससे पारदर्शिता और जवाबदेही दोनों बढ़ेंगी।

यह व्यवस्था मौजूदा सरकारी निगरानी तंत्रों के साथ जोड़ी जा सकती है। ग्रीन इंडिया मिशन के अंतर्गत भू-स्थानिक आँकड़ों तथा निगरानी एवं मूल्यांकन के लिए पहले से रूपरेखाएँ उपलब्ध हैं। अरावली के लिए इन्हें एक विशेष भूदृश्य-स्तरीय निगरानी प्रणाली में विकसित किया जा सकता है।

नौवीं प्राथमिकता होगी—**शहरी विस्तार पर पारिस्थितिक नियंत्रण।** दिल्ली-एनसीआर और हरियाणा के कुछ हिस्सों में अरावली पर दबाव केवल खनन से नहीं, बल्कि रियल एस्टेट, सड़कों, अवसंरचना और शहरी विस्तार से भी है। इसलिए शहरों की मास्टर योजनाओं में अरावली के पारिस्थितिक क्षेत्रों को अलग से चिह्नित किया जाना चाहिए। प्राकृतिक जल-निकासी तंत्र और प्राकृतिक आवास गलियारों को "खाली भूमि" मानकर निर्माण के लिए उपलब्ध नहीं समझा जाना चाहिए।

शहरी क्षेत्रों में जहाँ अरावली पहले से क्षरित है, वहाँ पारिस्थितिक उद्यान, स्थानीय प्राकृतिक वनस्पति, भूजल पुनर्भरण क्षेत्र और जैव-विविधता क्षेत्र विकसित किए जा सकते हैं। लेकिन यह समझना जरूरी है कि "बड़ा भूदृश्य उद्यान" और "प्राकृतिक अरावली पारिस्थितिक तंत्र" एक ही चीज नहीं हैं। संरक्षण का लक्ष्य प्राकृतिक भूदृश्य को बचाना होना चाहिए, न कि केवल उसकी जगह सजावटी हरियाली विकसित करना।

दसवीं प्राथमिकता होगी—**जलवायु परिवर्तन को अरावली के पुनर्स्थापन के केंद्र में रखना।** आने वाले दशकों में बढ़ते तापमान, वर्षा की अनिश्चितता, सूखे और अचानक होने वाली भारी वर्षा के कारण जल और भूमि पर दबाव बढ़ सकता है। इसलिए अरावली को जलवायु अनुकूलन के प्राकृतिक अवसंरचना तंत्र के रूप में देखना चाहिए। ग्रीन इंडिया मिशन भी पारिस्थितिक तंत्र के पुनर्स्थापन, जलवैज्ञानिक सेवाओं, जैव-विविधता और जलवायु परिवर्तन की प्रतिक्रिया को एक-दूसरे से जोड़ता है।

अरावली की पुनर्स्थापन योजना में जलवायु संकेतक जोड़े जाने चाहिए। उदाहरण के लिए, क्या क्षरित जलग्रहण क्षेत्र में मृदा नमी बढ़ी? क्या भूजल पुनर्भरण बेहतर हुआ? क्या मृदा अपरदन घटा? क्या वनस्पति अधिक सूखा-सहिष्णु हुई? क्या स्थानीय तापमान और धूल के संपर्क में सुधार हुआ? इन प्रश्नों के उत्तर ही पुनर्स्थापन की वास्तविक सफलता को बताएँगे।

ग्यारहवीं प्राथमिकता होगी—**वैज्ञानिक अनुसंधान और स्वतंत्र लेखा-परीक्षण।** अरावली जैसे जटिल भूदृश्य में निगरानी एक बार करके समाप्त नहीं की जा सकती।

हर तीन से पाँच वर्ष में पारिस्थितिक स्थिति का स्वतंत्र आकलन होना चाहिए। विश्वविद्यालयों, वैज्ञानिक संस्थानों और स्वतंत्र विशेषज्ञों को निगरानी प्रक्रिया में

शामिल किया जा सकता है। आँकड़े सार्वजनिक होने चाहिए, ताकि सरकार के दावों और जमीन पर दिखाई देने वाली वास्तविक स्थिति के बीच तुलना संभव हो।
इसी संदर्भ में 25 मई 2026 का सुप्रीम कोर्ट का आदेश महत्वपूर्ण है। अदालत ने उच्चाधिकार प्राप्त समिति के गठन के समय विशेष रूप से बहुविषयक विशेषज्ञता की आवश्यकता बताई—भूविज्ञान, मृदा विशेषताएँ, जैव-विविधता, वनस्पति एवं जीव-जंतु, खनिज संपदा, प्राकृतिक संसाधन तथा सटीक भू-मानचित्रण जैसे विषयों को एक साथ देखने की बात कही। यही दृष्टिकोण भविष्य की अरावली नीति में भी अपनाया जाना चाहिए।

बारहवीं प्राथमिकता होगी—**कानूनी और प्रशासनिक समन्वय।** अरावली चार राज्यों—गुजरात, राजस्थान, हरियाणा और दिल्ली—से जुड़ी है। किसी एक राज्य में किया गया भूमि-उपयोग परिवर्तन दूसरे राज्य की पारिस्थितिक प्रणाली पर प्रभाव डाल सकता है। इसलिए एक अंतरराज्यीय अरावली समन्वय तंत्र होना चाहिए। इसके अंतर्गत साझा GIS डेटाबेस, संयुक्त प्रवर्तन प्रोटोकॉल, समान पारिस्थितिक संकेतक और नियमित अंतरराज्यीय समीक्षा की व्यवस्था की जा सकती है।
इसका उद्देश्य राज्यों की शक्तियाँ कम करना नहीं, बल्कि भूदृश्य की पारिस्थितिक निरंतरता को स्वीकार करना होना चाहिए। अरावली प्रशासनिक सीमाओं से नहीं बनी है। इसलिए उसके संरक्षण की योजना भी केवल राज्य की सीमा तक सीमित नहीं रहनी चाहिए।

तेरहवीं प्राथमिकता होगी—**वित्तीय व्यवस्था को परिणामों से जोड़ना।** अरावली पुनर्स्थापन में CAMPA, MGNREGS, ग्रीन इंडिया मिशन और अन्य कार्यक्रमों को जोड़ने का प्रस्ताव पहले से मौजूद है। अब आवश्यकता यह है कि वित्तीय सहायता केवल गतिविधि-आधारित न हो, बल्कि परिणाम-आधारित भी हो। यदि किसी गाँव में पुनर्स्थापन परियोजना के लिए धन दिया गया है, तो अगले चरण की वित्तीय सहायता को वनस्पति के जीवित रहने की दर, जल की स्थिति में सुधार और जैव-विविधता के परिणामों से जोड़ा जा सकता है।
इससे "कार्य पूरा हुआ" और "परिणाम प्राप्त हुआ" के बीच का अंतर समाप्त होगा। उदाहरण के लिए, 10,000 पौधे लगाना अपने आप में सफलता न माना जाए; बल्कि पाँच वर्ष बाद कितने पौधे जीवित हैं, मृदा अपरदन कितना घटा और पारिस्थितिक कार्यप्रणाली में कितना सुधार हुआ—इन्हें सफलता का आधार बनाया जाए।

चौदहवीं प्राथमिकता होगी—**अरावली ज्ञान और शिक्षा कार्यक्रम।** स्कूलों, कॉलेजों और स्थानीय संस्थाओं में अरावली के पारिस्थितिक महत्व को पढ़ाया जाना चाहिए। केवल यह बताना पर्याप्त नहीं है कि अरावली भारत की प्राचीन पर्वत-श्रृंखलाओं में से एक है। विद्यार्थियों को यह समझना चाहिए कि पहाड़ी और जल के

बीच क्या संबंध है, वन और मिट्टी कैसे जुड़े हैं, जैव-विविधता क्यों महत्वपूर्ण है और खनन से भूदृश्य किस प्रकार बदलता है।
स्थानीय युवाओं को "अरावली पर्यावरण स्वयंसेवक" जैसे कार्यक्रमों से जोड़ा जा सकता है। वे जैव-विविधता के दस्तावेजीकरण, जलस्रोतों के मानचित्रण और नागरिक विज्ञान में योगदान दे सकते हैं। इस तरह संरक्षण केवल सरकारी कार्यक्रम न रहकर एक सामाजिक ज्ञान आंदोलन बन सकता है।

पंद्रहवीं प्राथमिकता होगी—**स्पष्ट और समयबद्ध कार्ययोजना।** अरावली के लिए योजना जितनी बड़ी होगी, उतना ही आवश्यक होगा कि उसकी समयसीमा स्पष्ट हो। एक संभावित ढाँचा इस प्रकार हो सकता है—पहले दो वर्षों में वैज्ञानिक मानचित्रण और पारिस्थितिक क्षेत्रीकरण; अगले तीन वर्षों में अत्यधिक संवेदनशील क्षेत्रों की सुरक्षा और अवैध गतिविधियों पर नियंत्रण; पाँच से दस वर्षों में क्षरित भूदृश्यों, खनन क्षेत्रों और जलागम क्षेत्रों का बड़े पैमाने पर पुनर्स्थापन; और दस वर्षों के बाद पारिस्थितिक पुनर्प्राप्ति का स्वतंत्र आकलन।
इसका अर्थ यह नहीं है कि हर काम एक के बाद एक किया जाए। कई कार्य समानांतर रूप से चलने चाहिए। मानचित्रण और प्रवर्तन तुरंत शुरू हो सकते हैं। अत्यधिक संवेदनशील क्षेत्रों में पुनर्स्थापन तत्काल शुरू हो सकता है। खनन-प्रभावित क्षेत्रों का पुनर्वास भी मानचित्रण के साथ-साथ चल सकता है।

यही कारण है कि 2025–2034 अरावली भूदृश्य पुनर्स्थापन योजना को केवल वृक्षारोपण कार्यक्रम न बनाकर एक व्यापक पारिस्थितिक पुनर्प्राप्ति कार्यक्रम के रूप में विकसित करना चाहिए। सरकार की विस्तृत कार्ययोजना पहले ही वन पुनर्स्थापन, घासभूमि पुनर्जीवन और खनन क्षेत्रों के पुनर्वास को एक साथ जोड़ती है। अब इसे न्यायिक संरक्षण, वैज्ञानिक मानचित्रण और सामुदायिक भागीदारी के साथ जोड़ने की आवश्यकता है।

इस पूरी कार्ययोजना में एक बात सबसे महत्वपूर्ण है—नई क्षति को रोकना और पुरानी क्षति को ठीक करना एक साथ चलना चाहिए। यदि हम हर वर्ष नई पहाड़ियों को काटते रहें और दूसरी जगह पौधे लगाते रहें, तो कुल पारिस्थितिक संतुलन सुधरेगा नहीं। पुनर्स्थापन का पहला सिद्धांत इसलिए "क्षति से बचाव", दूसरा "क्षति को न्यूनतम करना", तीसरा "पुनर्स्थापन" और अंतिम विकल्प "क्षतिपूर्ति" होना चाहिए। अर्थात जहाँ संवेदनशील पारिस्थितिक तंत्र को बचाया जा सकता है, वहाँ नुकसान को शुरू ही न होने देना, बाद में पुनर्स्थापन करने से बेहतर है।

अरावली के भविष्य के लिए एक और महत्वपूर्ण सिद्धांत होना चाहिए—जो क्षेत्र वैज्ञानिक रूप से महत्वपूर्ण है, उसके संरक्षण का स्तर उसकी प्रशासनिक **स्थिति से**

अधिक महत्वपूर्ण हो। यदि कोई पारिस्थितिक गलियारा किसी राजस्व भूमि पर है, तो केवल राजस्व वर्गीकरण के कारण उसका महत्व समाप्त नहीं हो जाना चाहिए। यदि कोई भूजल पुनर्भरण क्षेत्र किसी निजी या सामुदायिक भूमि पर है, तो संरक्षण ढाँचे में उसके पारिस्थितिक कार्य को ध्यान में रखना चाहिए। संरक्षण को भूमि के स्वामित्व से आगे जाकर पारिस्थितिक कार्यप्रणाली के आधार पर निर्धारित करना होगा।

यहाँ स्थानीय समुदायों के परंपरागत अधिकारों और वैध आजीविका संबंधी आवश्यकताओं का भी सम्मान होना चाहिए। संरक्षण तभी स्थायी होगा, जब लोगों को यह विश्वास हो कि अरावली को बचाने का अर्थ उनके अधिकार छीनना नहीं, बल्कि उनके भविष्य को सुरक्षित करना है। इसलिए संरक्षण की योजना में ग्राम सभा, पंचायत, किसान, पशुपालक, महिलाएँ, स्थानीय मजदूर और अन्य हितधारक वास्तविक भागीदार होने चाहिए।

आज की स्थिति में सबसे बड़ा अवसर यही है कि सुप्रीम कोर्ट की उच्चाधिकार प्राप्त समिति व्यापक वैज्ञानिक और सामाजिक सुझाव लेने की प्रक्रिया में है। जुलाई 2026 में पर्यावरण मंत्रालय ने सार्वजनिक सुझाव आमंत्रित किए और समिति से संबंधित सूचना जारी की। यह प्रक्रिया केवल कानूनी विवाद का हिस्सा नहीं होनी चाहिए; इसे अरावली के लिए एक दीर्घकालीन राष्ट्रीय संरक्षण ढाँचा तैयार करने के अवसर के रूप में देखा जाना चाहिए।

यदि इस प्रक्रिया से ऐसा ढाँचा विकसित होता है, जिसमें सटीक मानचित्रण, पारिस्थितिक क्षेत्रीकरण, खनन विनियमन, पुनर्स्थापन, भूजल संरक्षण, जैव-विविधता गलियारे, सामुदायिक भागीदारी और स्वतंत्र निगरानी सभी शामिल हों, तो अरावली संरक्षण की दिशा में ऐतिहासिक परिवर्तन संभव है।

अंततः अरावली का भविष्य किसी एक अदालत के आदेश, किसी एक सरकारी योजना या किसी एक वैज्ञानिक कसौटी से तय नहीं होगा। उसका भविष्य इस बात से तय होगा कि हम संरक्षण को कितनी गंभीरता से लागू करते हैं। अरावली को केवल "बचाना" पर्याप्त नहीं है। हमें उसे पुनर्जीवित करना होगा।

बचाव का अर्थ है—नई पहाड़ियों को कटने से रोकना। पुनर्जीवन का अर्थ है—कट चुकी पहाड़ियों, सूख चुके जलस्रोतों, क्षरित वनों, टूटे हुए गलियारों और क्षतिग्रस्त भूमि के पारिस्थितिक कार्यों को वापस लाना। बचाव तत्काल है; पुनर्जीवन दीर्घकालीन है। दोनों के बिना अरावली का भविष्य अधूरा रहेगा।

इसलिए आने वाले दस वर्षों के लिए अरावली का लक्ष्य बहुत स्पष्ट होना चाहिए—पहले उसकी वैज्ञानिक पहचान, फिर कानूनी सुरक्षा; पहले संवेदनशील क्षेत्रों की

रक्षा, फिर क्षरित क्षेत्रों का पुनर्स्थापन; पहले जल और जैव-विविधता की सुरक्षा, फिर नियंत्रित विकास; और हर चरण में स्थानीय समाज की भागीदारी।

यदि 2030 तक अरावली के प्रमुख पारिस्थितिक क्षेत्रों का वैज्ञानिक मानचित्रण पूरा हो, अवैध खनन पर वास्तविक समय आधारित निगरानी लागू हो, महत्वपूर्ण वन्यजीव गलियारे सुरक्षित हों, प्रमुख जलागम क्षेत्र पुनर्जीवित हों और पुनर्स्थापन परियोजनाओं के परिणाम सार्वजनिक रूप से मापे जाने लगें, तो यह एक ठोस परिवर्तन होगा। यदि 2035 तक क्षरित भूदृश्यों का बड़ा हिस्सा स्थानीय प्राकृतिक वनस्पति और बेहतर जल-प्रणाली की ओर लौटे, खनन-प्रभावित क्षेत्रों का पुनर्वास हो और स्थानीय समुदाय पुनर्स्थापन से स्थायी आजीविका प्राप्त करें, तो हम कह सकेंगे कि अरावली केवल संरक्षित नहीं हुई—वह पुनर्जीवित हुई। और यही इस पूरी पुस्तक का सबसे महत्वपूर्ण संदेश है।

अरावली को बचाने की अंतिम मंजिल केवल यह नहीं है कि उसकी पहाड़ियाँ कागज पर सुरक्षित घोषित कर दी जाएँ। अंतिम मंजिल यह है कि उसकी पहाड़ियाँ फिर से पानी रोकें, उसकी मिट्टी फिर से जीवन दे, उसके जंगल और झाड़ीदार क्षेत्र फिर से जैव-विविधता को सहारा दें, उसके वन्यजीव गलियारे फिर से जुड़ें, उसके क्षरित खनन भूदृश्य फिर से साँस लें और उसके आसपास रहने वाले लोगों को यह भरोसा हो कि यह पर्वत-श्रृंखला उनके वर्तमान और भविष्य दोनों की सुरक्षा करती है।

कानून अरावली को विनाश से रोक सकता है, विज्ञान उसकी सही पहचान कर सकता है, सरकार संसाधन उपलब्ध करा सकती है, न्यायपालिका जवाबदेही सुनिश्चित कर सकती है और जनता उसे जमीन पर बचा सकती है। लेकिन इन सबको एक सूत्र में बाँधने वाला विचार है—**पुनर्जीवन।**
अरावली के भविष्य की सबसे मजबूत कार्ययोजना इसलिए वही होगी जो "कितना क्षेत्र संरक्षित है" से आगे जाकर पूछे—**"कितना पारिस्थितिक तंत्र जीवित है?"**

यदि इस प्रश्न को नीति का केंद्र बना दिया गया, तो अरावली केवल भारत की प्राचीन पर्वत-श्रृंखला के रूप में नहीं बचेगी। वह आने वाली पीढ़ियों के लिए जल-सुरक्षा, जैव-विविधता, जलवायु-सहनशीलता, मिट्टी संरक्षण और स्थानीय आजीविका की एक जीवित प्राकृतिक सुरक्षा-व्यवस्था बन सकती है। और तब अरावली के संरक्षण की कहानी केवल "*विनाश को रोकने*" की कहानी नहीं होगी; वह "*एक घायल पर्वत-तंत्र को फिर से जीवन देने*" की कहानी होगी। यही अरावली का भविष्य होना चाहिए—**संरक्षण से पुनर्जीवन तक, कानून से जमीन तक और योजना से परिणाम तक।**

10.
निष्कर्ष:
अरावली बचेगी तो भविष्य बचेगा — आज का फैसला, आने वाली पीढ़ियों का अधिकार

अरावली की कहानी केवल पहाड़ों की कहानी नहीं है। यह पानी की कहानी है, जंगलों की कहानी है, मिट्टी और खेती की कहानी है, वन्यजीवों की कहानी है और उन करोड़ों लोगों के भविष्य की कहानी है जिनका जीवन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उत्तर-पश्चिम भारत की प्राकृतिक प्रणालियों से जुड़ा हुआ है। इसलिए अरावली के भविष्य पर होने वाला कोई भी निर्णय केवल यह तय करने वाला प्रशासनिक या कानूनी निर्णय नहीं हो सकता कि कौन-सी पहाड़ी "अरावली" कहलाएगी और कौन-सी नहीं। वास्तविक प्रश्न यह है कि क्या भारत आने वाली पीढ़ियों के लिए उस प्राकृतिक सुरक्षा-व्यवस्था को सुरक्षित रखेगा, जिसने हजारों वर्षों से जल, भूमि, जैव-विविधता और मानव सभ्यता को सहारा दिया है।

आज अरावली एक ऐसे निर्णायक मोड़ पर खड़ी है जहां एक तरफ विकास, खनन, सड़क, उद्योग, आवास और शहरी विस्तार की आवश्यकताएं हैं और दूसरी तरफ जल-सुरक्षा, पारिस्थितिक संतुलन, जैव-विविधता और जलवायु-सहनशीलता की जरूरत है। इन दोनों को एक-दूसरे का विरोधी मानना समस्या का समाधान नहीं है। वास्तविक समाधान यह है कि विकास ऐसा हो जो प्राकृतिक आधार को नष्ट न करे। क्योंकि यदि प्राकृतिक आधार ही नष्ट हो गया तो विकास की आर्थिक उपलब्धियां भी लंबे समय तक टिक नहीं पाएंगी। इसीलिए इस पुस्तक की पूरी यात्रा का अंतिम निष्कर्ष एक सरल लेकिन अत्यंत गहरा वाक्य है—**अरावली बचेगी तो भविष्य बचेगा।**

नवम्बर 2025 से शुरू हुई न्यायिक बहस ने अरावली की परिभाषा, उसके संरक्षण और खनन के प्रश्न को राष्ट्रीय चर्चा के केंद्र में ला दिया। 20 नवम्बर 2025 के सुप्रीम कोर्ट के आदेश में अरावली पहाड़ियों और पर्वत-श्रेणियों की कार्यपरक परिभाषा स्वीकार की गई और साथ ही सतत खनन के लिए प्रबंधन योजना तैयार करने की दिशा दी गई। अदालत ने अरावली को गुजरात से दिल्ली तक एक सतत भूवैज्ञानिक पर्वत-श्रेणी के रूप में देखने तथा पारिस्थितिक संवेदनशीलता, संरक्षण की दृष्टि से

महत्वपूर्ण क्षेत्र, पुनर्स्थापन तथा संचयी प्रभाव जैसे पहलुओं को योजना में शामिल करने पर जोर दिया। लेकिन यह प्रक्रिया वहीं समाप्त नहीं हुई। 29 दिसम्बर 2025 को सुप्रीम कोर्ट ने अपने पहले आदेश को आगे के विचार तक रोक दिया। इसके बाद अरावली की परिभाषा के वैज्ञानिक आधार और उससे संभावित पर्यावरणीय प्रभावों की समीक्षा का प्रश्न और अधिक महत्वपूर्ण हो गया। 25 मई 2026 को सुप्रीम कोर्ट ने पांच सदस्यीय उच्चाधिकार प्राप्त समिति गठित की, जिसे अरावली पहाड़ियाँ और पर्वत-श्रेणियाँ तथा उससे जुड़े मुद्दों का व्यापक अध्ययन करना है। समिति को भूगर्भीय और मृदा विशेषताओं, जैव-विविधता, वनस्पति एवं जीव-जंतु, प्राकृतिक संसाधनों और वैज्ञानिक भू-मानचित्रण सहित अनेक पहलुओं का परीक्षण करना है।

जुलाई 2026 में इस समिति ने जनता और विभिन्न हितधारकों से सुझाव, अभ्यावेदन एवं दस्तावेजी साक्ष्य भी आमंत्रित किए और उसे 31 अगस्त 2026 तक अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करनी है। अगस्त 2026 में समिति का क्षेत्रीय सर्वेक्षण भी शुरू हो चुका है और मंगर बानी जैसे महत्वपूर्ण पारिस्थितिक क्षेत्र का निरीक्षण किया गया है। यह घटनाक्रम इस बात का संकेत है कि अरावली का प्रश्न अभी जीवित और निर्णायक है। यह भी अवसर है कि अंतिम नीति केवल कागजी परिभाषा पर नहीं बल्कि विज्ञान, जमीन की वास्तविक स्थिति और समाज की आवश्यकताओं पर आधारित हो। लेकिन किसी भी न्यायिक आदेश से आगे एक बड़ा प्रश्न हमारे सामने है—**क्या हम अरावली को केवल कानूनी रूप से बचाना चाहते हैं या वास्तव में जीवित रखना चाहते हैं?**

कानूनी संरक्षण आवश्यक है, लेकिन पर्याप्त नहीं। यदि किसी पहाड़ी को कागज पर संरक्षित घोषित कर दिया जाए और उसके आसपास का जलग्रहण क्षेत्र नष्ट होता रहे, प्राकृतिक जल निकासी (Natural Drainage) बंद होती रहे, जंगल कटते रहें, अवैध खनन चलता रहे और भूजल लगातार नीचे जाता रहे, तो केवल कानूनी सुरक्षा उस पारिस्थितिकी को नहीं बचा सकती। दूसरी ओर यदि वैज्ञानिक अध्ययन, स्थानीय समुदाय की भागीदारी, जल-संरक्षण, वन पुनर्स्थापन और प्रभावी प्रशासन एक साथ काम करें, तो संरक्षण वास्तविक परिणाम दे सकता है।

इसी संदर्भ में **डॉ. राजेंद्र सिंह**, **जिन्हें भारत में व्यापक रूप से "जल पुरुष"** के रूप में जाना जाता है, का कार्य अरावली के भविष्य के लिए एक अत्यंत महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है। उनका योगदान यह सिखाता है कि पर्यावरण संरक्षण केवल बड़े सरकारी प्रोजेक्ट से नहीं, बल्कि स्थानीय समाज और प्रकृति के बीच टूटे हुए संबंध को फिर से स्थापित करके भी किया जा सकता है।

राजस्थान में **तरुण भारत संघ** के साथ उनके लंबे काम ने पारंपरिक जल-संरक्षण प्रणालियों, विशेषकर जोहड़ और छोटे जल-संचयन ढांचों को पुनर्जीवित करने के माध्यम से सूखते क्षेत्रों में जल-चक्र को मजबूत करने का उदाहरण प्रस्तुत किया। तरुण भारत संघ स्वयं डॉ. राजेंद्र सिंह के नेतृत्व को जल संरक्षण और समुदाय-आधारित जल प्रबंधन के केंद्र में रखता है।

अरवरी नदी का पुनर्जीवन इस प्रयास का सबसे प्रसिद्ध उदाहरण है। स्थानीय समुदायों के साथ मिलकर जलग्रहण क्षेत्र में छोटे-छोटे जल-संचयन ढांचे बनाए गए। उपलब्ध विवरणों के अनुसार, इन प्रयासों के बाद अरवरी नदी, जो लंबे समय तक सूखी या मौसमी स्थिति में थी, फिर से बहने लगी। तरुण भारत संघ और अन्य स्रोतों ने राजस्थान में अरवरी सहित कई नदियों के पुनर्जीवन तथा हजारों पारंपरिक जल-संरचनाओं के निर्माण का उल्लेख किया है।

डॉ. राजेंद्र सिंह की सबसे बड़ी सीख यह है कि **पानी को केवल पाइप और बांध का विषय समझना गलत है। पानी पहाड़, जंगल, मिट्टी, वर्षा और समुदाय—इन सभी के बीच संबंध का परिणाम है।** यदि पहाड़ और जलग्रहण क्षेत्र सुरक्षित हैं, वर्षाजल को भूमि में उतरने का अवसर मिलता है और स्थानीय समाज जल-संरक्षण में भागीदार है, तो जल-सुरक्षा मजबूत हो सकती है।
यही शिक्षा अरावली के लिए अत्यंत प्रासंगिक है। अरावली को बचाने का अर्थ केवल उसकी चट्टानों को बचाना नहीं है। इसका अर्थ है उन प्राकृतिक प्रक्रियाओं को बचाना जिनसे वर्षाजल का प्रवाह, मिट्टी का संरक्षण, भूजल पुनर्भरण और स्थानीय पारिस्थितिकी जुड़ी है। डॉ. राजेंद्र सिंह का काम इस विचार का जीवंत उदाहरण है कि **नदी को बचाने के लिए केवल नदी के किनारे काम नहीं करना पड़ता; उसके पूरे जलग्रहण क्षेत्र को समझना पड़ता है।** अरावली के लिए भी यही सिद्धांत लागू होता है।

यहां **डॉ. भरत राज सिंह**, **पर्यावरणविद् एवं महानिदेशक (तकनीकी), स्कूल ऑफ मैनेजमेंट साइंसेज, लखनऊ**, का योगदान भी विशेष उल्लेख के योग्य है। उनका कार्य अरावली के प्रश्न को पर्यावरण, विज्ञान, ऊर्जा, जलवायु और सामाजिक चेतना के व्यापक विमर्श से जोड़ने का प्रयास करता है। उनके संस्थागत प्रोफाइल के अनुसार वे स्कूल ऑफ़ मैनेजमेंट साइंसेज, लखनऊ में महानिदेशक(तकनीकी) के रूप में कार्यरत हैं और पर्यावरण, ऊर्जा तथा सतत विकास से जुड़े अकादमिक एवं शोध कार्यों में सक्रिय रहे हैं।

अरावली के संदर्भ में उनका विशेष योगदान **लेखन, संपादन और जन-जागरूकता के माध्यम से इस संकट को व्यापक विमर्श में लाना** है। डॉ. राजेंद्र सिंह के साथ मिलकर प्रकाशित 2026 की पुस्तक अरावली पर मंडराता नया संकट

(A New Crisis over the Aravalli) में डॉ. भरत राज सिंह संपादक के रूप में जुड़े हैं। पुस्तक अरावली संकट को खनन, वनों की कटाई, पारिस्थितिक असंतुलन, भूजल ह्रास और कृषि संकट और सामाजिक अस्थिरता जैसे परस्पर जुड़े मुद्दों के रूप में प्रस्तुत करती है।

इस पुस्तक का महत्व केवल इसलिए नहीं है कि इसमें अरावली पर चर्चा की गई है, बल्कि इसलिए भी है कि इसमें **जल पुरुष डॉ. राजेंद्र सिंह के जमीनी अनुभव और डॉ. भरत राज सिंह की पर्यावरणीय एवं तकनीकी दृष्टि को एक साथ लाने का प्रयास** दिखाई देता है। यह संयोजन महत्वपूर्ण है। एक ओर वह व्यक्ति है जिसने गांवों के बीच जाकर पानी और समुदाय के संबंध को मजबूत किया; दूसरी ओर वैज्ञानिक और अकादमिक दृष्टिकोण है जो पर्यावरणीय संकट को व्यापक नीति, विज्ञान और तकनीक के संदर्भ में देखने का प्रयास करता है।
डॉ. भरत राज सिंह की भूमिका को इसी व्यापक अर्थ में समझना चाहिए। उनका योगदान किसी एक सरकारी संरक्षण परियोजना के संचालन के रूप में प्रस्तुत करना उचित नहीं होगा; उपलब्ध स्रोत उन्हें मुख्यतः पर्यावरणविद्, अकादमिक नेतृत्वकर्ता, लेखक/संपादक एवं पर्यावरण जागरूकता के समर्थक के रूप में स्थापित करते हैं। उनकी पुस्तक-संबंधी सामग्री में अरावली का पारिस्थितिक असंतुलन, खनन-प्रेरित विकास एवं पर्यावरणीय कानून और जल-संकट को आपस में जोड़कर देखने की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

यह योगदान इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि आज अरावली की लड़ाई केवल जंगल बचाने की लड़ाई नहीं है। यह ज्ञान की लड़ाई भी है। समाज को यह समझना होगा कि एक पहाड़ी कटने का अर्थ केवल एक पहाड़ी का कम होना नहीं है। उसका प्रभाव मृदा अपरदन, जल प्रवाह, भूजल पुनर्भरण एवं आवासीय क्षेत्र की संपर्कता, स्थानीय तापमान और मानव स्वास्थ्य तक पहुंच सकता है। इसलिए अरावली संरक्षण के लिए वैज्ञानिक भाषा को जनभाषा में बदलना भी आवश्यक है।

यहीं इस पुस्तक की मूल भावना डॉ. राजेंद्र सिंह और डॉ. भरत राज सिंह के लेखन-संपादन की भूमिका एक-दूसरे से जुड़ती है—पर्यावरणीय ज्ञान तभी प्रभावी है जब वह समाज को समझ में आए और समाज उसे अपने जीवन से जोड़ सके।
अरावली की रक्षा में डॉ. राजेंद्र सिंह और डॉ. भरत राज सिंह के योगदान को साथ रखकर देखें तो एक महत्वपूर्ण संदेश सामने आता है। पहला संदेश है—**पानी बचाना है तो जलग्रहण क्षेत्र बचाइए।** दूसरा संदेश है—**पर्यावरण बचाना है तो विज्ञान और समाज को साथ लाइए।** और तीसरा संदेश है—**किसी प्राकृतिक संसाधन को केवल आर्थिक वस्तु की तरह मत देखिए।** अरावली के भविष्य के लिए यही तीन सिद्धांत अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

आज हमें अरावली के बारे में एक नई सोच विकसित करनी होगी। अब प्रश्न यह नहीं होना चाहिए कि "इस पहाड़ी से कितना खनिज निकाला जा सकता है?" बल्कि प्रश्न होना चाहिए कि "यह पहाड़ी समाज को कितनी पारिस्थितिकीय सेवाएँ दे रही है?" यदि कोई पहाड़ी भूजल पुनर्भरण में योगदान देती है, वन्यजीवों की आवाजाही का हिस्सा है, मिट्टी को मृदा अपरदन से बचाती है, वनस्पति को सहारा देती है और स्थानीय जलवायु को प्रभावित करती है, तो उसके मूल्य को केवल उसके नीचे मौजूद खनिज की कीमत से नहीं मापा जा सकता।

यहां अंतर-पीढ़ीगत समानता, अर्थात पीढ़ियों के बीच न्याय, का सिद्धांत अत्यंत महत्वपूर्ण है। आज की पीढ़ी को प्राकृतिक संसाधनों पर पूरा अधिकार नहीं है। वह भविष्य की पीढ़ियों की न्यासी **/** धरोहर का संरक्षक है। यदि आज किसी प्राकृतिक प्रणाली को इस हद तक नष्ट कर दिया जाए कि आने वाली पीढ़ियां उसे पुनर्जीवित न कर सकें, तो यह केवल पर्यावरणीय क्षति नहीं बल्कि पीढ़ियों के बीच अन्याय होगा।

भारत के संवैधानिक और न्यायिक पर्यावरणीय सिद्धांत भी इसी दिशा की ओर संकेत करते हैं। **सर्वोच्च न्यायालय** ने संविधान के **अनुच्छेद 21** के अंतर्गत स्वस्थ एवं स्वच्छ पर्यावरण के अधिकार को पर्यावरणीय न्यायशास्त्र में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। **लोक न्यास सिद्धांत (Public Trust Doctrine)** राज्य को प्राकृतिक संसाधनों का न्यासी मानता है, अर्थात राज्य का दायित्व है कि वह इन संसाधनों का संरक्षण वर्तमान और भावी पीढ़ियों के हित में करे। वहीं, सावधानी सिद्धांत (Precautionary Principle) यह मांग करता है कि गंभीर पर्यावरणीय जोखिम की स्थिति में वैज्ञानिक अनिश्चितता को संरक्षणात्मक कार्रवाई से बचने का आधार न बनाया जाए।
अरावली के संदर्भ में इसका सीधा अर्थ है कि यदि किसी क्षेत्र के पारिस्थितिक महत्व को लेकर वैज्ञानिक चिंता मौजूद है, तो किसी अंतिम और संभावित रूप से विनाशकारी निर्णय से पहले पर्याप्त वैज्ञानिक अध्ययन और मूल्यांकन किया जाना चाहिए। एक बार पहाड़ी काट दी गई, **भूजलभृत (Aquifer)** क्षतिग्रस्त हो गया या **प्राकृतिक आवास (प्राकृतिक आवास)** का संपर्क तंत्र टूट गया, तो बाद में उसे उसकी मूल प्राकृतिक अवस्था में पूरी तरह पुनर्स्थापित करना अत्यंत कठिन हो सकता है। इसीलिए 2026 में गठित उच्चाधिकार प्राप्त समिति (High-Powered Committee) का कार्य महत्वपूर्ण है। समिति को केवल ऊंचाई के आधार पर अरावली की पहचान नहीं करनी है, बल्कि भूविज्ञान, मृदा, जैव-विविधता, वनस्पति एवं जीव-जंतु तथा प्राकृतिक संसाधन और भू-मानचित्रण जैसे विषयों का व्यापक परीक्षण करना है। जुलाई 2026 में जनता से दस्तावेजी साक्ष्य और सुझाव मांगना भी इस बात का संकेत है कि इस प्रक्रिया में वैज्ञानिक और सामाजिक input दोनों की आवश्यकता है।

यहां जनता की भूमिका केवल विरोध करने तक सीमित नहीं होनी चाहिए। स्थानीय लोग अरावली के सबसे बड़े ज्ञान-धारक में से हो सकते हैं। किस पहाड़ी से कौन-सा नाला निकलता था, कौन-सा तालाब किस वर्षा में भरता था, किस क्षेत्र में कौन-सी वनस्पति मिलती थी, किस रास्ते से वन्यजीव आते-जाते थे और किस जगह भूजल का स्तर बदल रहा है—ऐसी स्थानीय जानकारी को वैज्ञानिक मानचित्रण को और मजबूत कर सकती है।
अरावली संरक्षण के लिए नागरिक विज्ञान को संस्थागत रूप दिया जा सकता है। स्कूलों के विद्यार्थी, कॉलेज के युवा, ग्राम पंचायतें, किसान संगठन और स्थानीय स्वयंसेवी संगठन जलस्रोतों, पेड़-पौधों, वन्यजीव दर्शन के अभिलेख और भूमि उपयोग में बदलाव का आँकड़े तैयार कर सकते हैं। वैज्ञानिक संस्थान इस आँकड़े का सत्यापन कर सकते हैं। इससे अरावली की निगरानी केवल सरकारी मशीनरी पर निर्भर नहीं रहेगी।

इसी प्रकार अरावली के पुनर्जीवन को रोजगार से जोड़ा जा सकता है। डॉ. राजेंद्र सिंह के कार्य से यह सिद्धांत सामने आता है कि जल और पर्यावरण संरक्षण स्थानीय समाज के लिए आर्थिक अवसर भी बन सकता है। जोहड़ निर्माण, जलग्रहण विकास, वृक्षारोपण, स्थानीय प्रजातियों की पौधशाला, चरागाह प्रबंधन, मिट्टी संरक्षण और पारिस्थितिक पुनर्स्थापन में स्थानीय रोजगार पैदा किया जा सकता है। इससे संरक्षण और आजीविका के बीच संघर्ष घट सकता है।

अरावली **ग्रीन वॉल पहल (Aravalli Green Wall Initiative)** इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण अवसर है। सरकार ने 2025–2034 के लिए अरावली **परिदृश्य पुनर्स्थापन** की चरणबद्ध योजना प्रस्तुत की है, जिसमें क्षतिग्रस्त वन क्षेत्रों, झाड़ीदार भूमि, घासभूमि, कृषि-परिदृश्यों और खनन से प्रभावित क्षेत्रों के पुनर्स्थापन को शामिल किया गया है। सरकारी विवरणों के अनुसार, लगभग **6.31 मिलियन हेक्टेयर** क्षेत्र के पुनर्स्थापन का प्रस्ताव है तथा विभिन्न राज्यों में पुनर्स्थापन संबंधी गतिविधियाँ निर्धारित की गई हैं।

लेकिन आने वाले वर्षों में इसकी सफलता का पैमाना बदलना होगा। केवल यह नहीं पूछा जाना चाहिए कि कितने पौधे लगाए गए**,** बल्कि यह भी देखा जाना चाहिए कि कितने पौधे जीवित बचे, कितनी देशज प्रजातियाँ वापस लौटीं, कितने जलस्रोत पुनर्जीवित हुए, भूजल स्तर में कितना सुधार हुआ, वन्यजीव गलियारे कितने सुरक्षित हुए और कितने स्थानीय परिवारों को स्थायी आजीविका एवं वास्तविक लाभ मिला।

अरावली की वास्तविक सफलता केवल लगाए गए पौधों की संख्या में नहीं, बल्कि पारिस्थितिक पुनर्बहाली की गुणवत्ता और उसके दीर्घकालिक परिणामों में दिखाई देगी।
इसलिए भविष्य के लिए एक स्पष्ट दस-वर्षीय रोडमैप आवश्यक है। पहले चरण में पूरे अरावली परिदृश्य (भूदृश्य) का वैज्ञानिक मानचित्रण किया जाए। दूसरे चरण में पारिस्थितिक संवेदनशीलता के आधार पर क्षेत्र-विभाजन (Zoning) किया जाए। तीसरे चरण में अत्यधिक संवेदनशील क्षेत्रों को मजबूत कानूनी संरक्षण प्रदान किया जाए। चौथे चरण में अवैध खनन और अतिक्रमण पर उपग्रह-आधारित निगरानी तथा कठोर कानून-प्रवर्तन लागू किया जाए। पाँचवें चरण में क्षतिग्रस्त भू-दृश्यों और परित्यक्त खदानों का पारिस्थितिक पुनर्स्थापन किया जाए। छठे चरण में जलागम विकास और भूजल पुनर्भरण कार्यक्रमों को अरावली पुनर्स्थापन से जोड़ा जाए। सातवें चरण में वन्यजीव गलियारों को सुरक्षित किया जाए। आठवें चरण में स्थानीय समुदायों को संरक्षण-प्रशासन में वास्तविक भागीदारी दी जाए। नौवें चरण में पुनर्स्थापन के परिणामों का स्वतंत्र लेखा-परीक्षण किया जाए तथा दसवें चरण में पूरे कार्यक्रम की वैज्ञानिक समीक्षा कर आगामी कार्ययोजना तैयार की जाए।

इस पूरी व्यवस्था में **राजनीतिक दलों से ऊपर पर्यावरणीय निरंतरता** का सिद्धांत आवश्यक है। अरावली किसी एक सरकार की संपत्ति नहीं है और न ही किसी एक पीढ़ी की। सरकारें बदलती रहेंगी, लेकिन अरावली का पारिस्थितिक महत्व बना रहेगा। इसलिए संरक्षण नीति को राजनीतिक परिवर्तन से ऊपर दीर्घकालीन राष्ट्रीय नीति का स्वरूप देना चाहिए।

अरावली को लेकर समाज में भी एक नई भाषा विकसित करने की आवश्यकता है। हमें यह कहना बंद करना होगा कि “पहाड़ी खाली जमीन है।” पहाड़ी खाली जमीन नहीं है। वह पानी रोकने वाली प्राकृतिक संरचना है। जंगल केवल पेड़ों का समूह नहीं है; वह मिट्टी, जल, हवा और जैव-विविधता की व्यवस्था है। स्क्रबलैंड (झाड़ीदार भूमि) बेकार झाड़ियाँ नहीं हैं; वे अनेक प्रजातियों के **आवास** और **परिदृश्यीय संपर्कता** का महत्वपूर्ण हिस्सा हो सकती हैं। जलग्रहण क्षेत्र केवल राजस्व रिकॉर्ड की जमीन नहीं है; वह किसी नदी, तालाब और कुएं के भविष्य का आधार है। यदि यह समझ समाज में विकसित होती है, तो अरावली संरक्षण केवल अदालत और सरकार का विषय नहीं रहेगा। वह नागरिक अधिकार और नागरिक कर्तव्य का विषय बन जाएगा।

डॉ. राजेंद्र सिंह के जीवन से यही सबसे बड़ी प्रेरणा मिलती है कि एक गांव से शुरू हुआ प्रयास बड़े क्षेत्र की जल-व्यवस्था को बदल सकता है। और डॉ. भरत राज सिंह के पर्यावरणीय लेखन और अकादमिक कार्य से यह संदेश मिलता है कि पर्यावरणीय प्रश्नों को विज्ञान, शिक्षा, तकनीक और सार्वजनिक संवाद से जोड़ना जरूरी है। दोनों

की भूमिकाएं अलग होते हुए भी एक-दूसरे को पूरक करती हैं—एक तरफ **जमीन पर जल और समुदाय का पुनर्जीवन**, दूसरी तरफ **ज्ञान, विज्ञान और जनचेतना का विस्तार**।
इसलिए अरावली के भविष्य की सबसे बड़ी जरूरत किसी एक नायक की नहीं, बल्कि ऐसे ही अनेक प्रयासों को जोड़ने की है।

सरकार अपनी जिम्मेदारी निभाए। न्यायपालिका पर्यावरणीय अधिकारों की रक्षा करे। वैज्ञानिक संस्थान प्रमाण उपलब्ध कराएं। विश्वविद्यालय शोध करें। उद्योग जिम्मेदार विकास अपनाएं। स्थानीय समुदाय निगरानी और पुनर्स्थापन में भाग लें। मीडिया तथ्यों के साथ जनता को जागरूक करे। और नागरिक यह समझें कि पर्यावरण संरक्षण किसी दूसरे व्यक्ति का काम नहीं है।

क्योंकि जब पानी की कमी होगी तो उसका प्रभाव केवल किसान पर नहीं पड़ेगा। जब गर्मी बढ़ेगी तो उसका प्रभाव केवल जंगल पर नहीं पड़ेगा। जब **भूजल स्तर नीचे जाएगा**, तो उसका प्रभाव केवल गाँव तक सीमित नहीं रहेगा। जब जैव-विविधता का संतुलन टूटेगा तो उसका प्रभाव केवल वन्यजीवों पर नहीं पड़ेगा। पर्यावरणीय संकट अंततः समाज और अर्थव्यवस्था दोनों को प्रभावित करता है।

यही कारण है कि अरावली का संरक्षण **आर्थिक विकास के विरुद्ध नहीं, बल्कि दीर्घकालीन आर्थिक सुरक्षा के पक्ष में** है।
यदि अरावली सुरक्षित रहती है तो उसके साथ जुड़े जलस्रोत, कृषि क्षेत्र, पशुपालन, वन्यजीव, पर्यटन, ग्रामीण आजीविका और शहरी जल-सुरक्षा को भी बेहतर आधार मिल सकता है। यदि अरावली क्षतिग्रस्त होती है तो उसका आर्थिक मूल्य भी बहुत बड़ा होगा— भूजल पुनर्भरण की कमी, बढ़ते जल-संकट, भूमि क्षरण, बढ़ती गर्मी, जैव-विविधता ह्रास तथा पुनर्स्थापन की बढ़ती लागत के रूप में।

इसलिए आज का सबसे महत्वपूर्ण निर्णय यह नहीं है कि हम अरावली से कितना लाभ ले सकते हैं। महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि **हम अरावली को कितना सुरक्षित रख सकते हैं ताकि वह आने वाली पीढ़ियों को भी लाभ देती रहे।** यही अंतरपीढ़ीगत न्याय है।
आज यदि कोई बच्चा अपने स्कूल में अरावली के बारे में पढ़ता है, तो उसे भविष्य में केवल किताब में यह नहीं पढ़ना चाहिए कि कभी भारत में एक प्राचीन पर्वत-श्रृंखला हुआ करती थी। उसे वास्तविक पहाड़ियां, जंगल, जलस्रोत और वन्यजीव गलियारा भी दिखाई देने चाहिए। उसे यह महसूस होना चाहिए कि पिछली पीढ़ियों ने उसके लिए कुछ बचाया था।
यही हमारी नैतिक जिम्मेदारी है।

अरावली को बचाना इसलिए केवल पर्यावरणीय सक्रियता नहीं है। यह राष्ट्र की प्राकृतिक विरासत की रक्षा है। यह जल-सुरक्षा है। यह खाद्य-सुरक्षा है। यह स्वास्थ्य-सुरक्षा है। यह जलवायु-सहनशीलता है। यह ग्रामीण आजीविका है। यह जैव-विविधता है। और अंततः यह **मानव सभ्यता के भविष्य की सुरक्षा** है।

आज सुप्रीम कोर्ट की उच्चाधिकार प्राप्त समिति अरावली की पहचान और संरक्षण पर विचार कर रही है। उसका अगस्त 2026 में स्थल सर्वेक्षण शुरू होना और जनता से सुझाव लेना एक महत्वपूर्ण अवसर है। इस प्रक्रिया का परिणाम चाहे जो हो, समाज को यह सुनिश्चित करना होगा कि अरावली की पारिस्थितिक संरक्षण कमजोर न हो, बल्कि वैज्ञानिक प्रमाणों के आधार पर और मजबूत हो।

यदि भविष्य की नीति केवल "कहां खनन हो सकता है" तय करेगी तो वह अधूरी होगी। यदि वह यह भी तय करेगी कि "कहां प्रकृति को पूरी तरह बचाना है, कहां पुनरुद्धार करना है, कहां जलग्रहण क्षेत्र को सुरक्षित करना है, कहां वन्यजीव गलियारा बनाए रखना है और कहां स्थानीय समुदाय के साथ टिकाऊ आजीविका विकसित करनी है", तभी वह वास्तविक अरावली नीति होगी। और यही इस पुस्तक का अंतिम संदेश है—

अरावली को बचाना केवल पहाड़ बचाना नहीं है।
अरावली को बचाना पानी बचाना है।
पानी बचाना खेती बचाना है।
खेती बचाना गांव बचाना है।
गांव बचाना समाज बचाना है।
और समाज का भविष्य बचाना ही आने वाली पीढ़ियों का अधिकार बचाना है।

जल पुरुष **डॉ. राजेंद्र सिंह** ने अपने कार्य से दिखाया कि सूखी नदी को फिर बहने का अवसर दिया जा सकता है, यदि जलग्रहण क्षेत्र और समुदाय दोनों को साथ लिया जाए। पर्यावरणविद् एवं **महानिदेशक, स्कूल ऑफ मैनेजमेंट साइंसेज, लखनऊ, डॉ. भरत राज सिंह** ने अपने अकादमिक, पर्यावरणीय और लेखकीय प्रयासों के माध्यम से अरावली संकट को व्यापक पर्यावरणीय विमर्श से जोड़ने में योगदान दिया है; राजेंद्र सिंह के साथ उनकी 2026 की पुस्तक **अरावली पर एक नया संकट** इसी प्रयास का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

इन दोनों योगदानों से हमें एक संयुक्त दिशा मिलती है—**प्रकृति को समझो, समाज को जोड़ो, विज्ञान को अपनाओ और संरक्षण को जमीन पर उतारो।**

अरावली के सामने आज संकट अवश्य है, लेकिन संकट के साथ अवसर भी है। यदि अभी निर्णय वैज्ञानिक तथ्यों, संवैधानिक मूल्यों, स्थानीय अनुभव और भविष्य की पीढ़ियों के अधिकारों को ध्यान में रखकर लिया जाता है, तो आने वाले दशकों में अरावली का पुनर्जीवन संभव है।

हमारे सामने दो रास्ते हैं। एक रास्ता वह है जिसमें पहाड़ धीरे-धीरे कटते जाएं, जलस्रोत सूखते जाएं, जंगल छोटे होते जाएं और फिर हम भविष्य में अरबों रुपये खर्च करके उस प्रकृति को वापस लाने की कोशिश करें जिसे आज कुछ निर्णयों से बचाया जा सकता है। दूसरा रास्ता वह है जिसमें आज ही सावधानी बरती जाए, संवेदनशील क्षेत्रों को बचाया जाए, क्षतिग्रस्त क्षेत्रों का पुनर्स्थापन किया जाए और विकास को पारिस्थितिक सीमाएँ के भीतर रखा जाए। समझदारी इसी दूसरे रास्ते में है। क्योंकि पहाड़ को काटने में कुछ महीने लग सकते हैं, लेकिन एक प्राकृतिक पर्वत-तंत्र को फिर बनाने में शायद सदियां लग जाएं।
इसलिए आज का निर्णय केवल आज का निर्णय नहीं है।

यह आने वाली पीढ़ियों के पानी का निर्णय है।
यह उनकी हवा का निर्णय है।
यह उनकी जमीन का निर्णय है।
यह उनकी जैव-विविधता का निर्णय है।
और अंततः यह उनके जीवन के अधिकार का निर्णय है।

इसलिए उपसंहार में केवल एक आग्रह किया जा सकता है—
अरावली को बचाइए, क्योंकि अरावली केवल अतीत की विरासत नहीं है; वह भविष्य की सुरक्षा है।

अरावली बचेगी तो पानी बचेगा।
पानी बचेगा तो जीवन बचेगा।
जीवन बचेगा तो सभ्यता बचेगी।
और सभ्यता बचेगी तो आने वाली पीढ़ियों का भविष्य सुरक्षित रहेगा।

यही अरावली के प्रति हमारी सबसे बड़ी जिम्मेदारी है और यही आने वाली पीढ़ियों के प्रति हमारा सबसे बड़ा उत्तरदायित्व।

अरावली को केवल बचाना नहीं है—उसे फिर से जीवित करना है।
संरक्षण से पुनर्जीवन तक।
कानून से जमीन तक।
विज्ञान से समाज तक।
और आज के निर्णय से आने वाली पीढ़ियों के अधिकार तक।

यही इस पूरी यात्रा का अंतिम संदेश है—**“अरावली बचेगी तो भविष्य बचेगा।”**

परिशिष्ट-I
संदर्भ / पुस्तकें:
वैदिक, वैज्ञानिक एवं न्यायिक स्रोत

I. वैदिक एवं भारतीय ज्ञान-परंपरा

1. ऋग्वेद — सम्पा. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी।
2. यजुर्वेद (वाजसनेयी संहिता) — स्वाध्याय मण्डल, पारडी।
3. सामवेद — स्वाध्याय मण्डल, पारडी।
4. अथर्ववेद — स्वाध्याय मण्डल, पारडी।
5. तैत्तिरीय संहिता — चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।
6. शतपथ ब्राह्मण — चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।
7. ऐतरेय ब्राह्मण — चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।
8. ईशावास्य उपनिषद् — गीता प्रेस, गोरखपुर।
9. छान्दोग्य उपनिषद् — गीता प्रेस, गोरखपुर।
10. बृहदारण्यक उपनिषद् — गीता प्रेस, गोरखपुर।
11. कठोपनिषद् — गीता प्रेस, गोरखपुर।
12. मुण्डकोपनिषद् — गीता प्रेस, गोरखपुर।
13. वाल्मीकि रामायण — गीता प्रेस, गोरखपुर।
14. महाभारत — भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पुणे।
15. श्रीमद्भगवद्गीता — गीता प्रेस, गोरखपुर।
16. श्रीमद्भागवत महापुराण — गीता प्रेस, गोरखपुर।
17. विष्णु पुराण — गीता प्रेस, गोरखपुर।
18. मत्स्य पुराण — गीता प्रेस, गोरखपुर।
19. वराह पुराण — गीता प्रेस, गोरखपुर।
20. स्कन्द पुराण — गीता प्रेस, गोरखपुर।
21. पद्म पुराण — गीता प्रेस, गोरखपुर।
22. अग्नि पुराण — गीता प्रेस, गोरखपुर।
23. वायु पुराण — गीता प्रेस, गोरखपुर।
24. वराहमिहिर — बृहत्संहिता, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
25. वराहमिहिर — पंचसिद्धान्तिका, चौखम्बा संस्कृत सीरीज।
26. सूर्य सिद्धान्त — निर्णय सागर प्रेस।
27. आर्यभटीय — आर्यभट्ट।
28. सिद्धान्त शिरोमणि — भास्कराचार्य।

II. जल, पर्यावरण एवं भारतीय ज्ञान-परंपरा

29. राजेन्द्र सिंह — *जल ही जल जीवन है*, तरुण भारत संघ, अलवर।

30. राजेन्द्र सिंह — *भारत में जल संरक्षण के लोक उपाय*, तरुण भारत संघ।
31. राजेन्द्र सिंह व भरत राज सिंह— *अरावली पर नया संकट*, लूलू अमेरिका।
32. अनुपम मिश्र — *आज भी खरे हैं तालाब*, गांधी शांति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली।
33. अनुपम मिश्र — *राजस्थान की रजत बूँदें*, गांधी शांति प्रतिष्ठान।
34. माधव गाडगिल एवं रामचन्द्र गुहा — *यह धरती हमारी* (अनुवादित संस्करण)।
35. एम. एस. स्वामीनाथन — *कृषि एवं पर्यावरण*।
36. राष्ट्रीय जल नीति — भारत सरकार।
37. केंद्रीय भूजल बोर्ड (CGWB) — विभिन्न भूजल एवं जल-संसाधन रिपोर्टें।
38. भारतीय मौसम विज्ञान विभाग (IMD) — विभिन्न मौसम एवं जलवायु प्रकाशन।

III. वैज्ञानिक एवं तकनीकी अभिलेख

39. वन Survey of India (FSI) — अरावली Hills एवं Ranges से संबंधित मानचित्रण एवं अभिलेख, विशेषतः 25 अगस्त 2010 की परिभाषा/रिपोर्ट।
40. Geological Survey of India (GSI) — अरावली क्षेत्र से संबंधित भूवैज्ञानिक अध्ययन एवं अभिलेख।
41. Central Empowered Committee (CEC) — अरावली क्षेत्र, खनन, भूजल पुनर्भरण एवं पर्यावरणीय प्रभाव से संबंधित रिपोर्ट, 7 मार्च 2024।
42. केंद्र सरकार द्वारा गठित अरावली परिभाषा संबंधी समिति — 3 अक्टूबर 2025 की रिपोर्ट।
43. पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार — अरावली क्षेत्र तथा सतत खनन प्रबंधन से संबंधित दिशा-निर्देश एवं अभिलेख।
44. राजस्थान सरकार, जल संसाधन विभाग — जल संसाधन एवं क्षेत्रीय अध्ययन रिपोर्टें।
45. मध्यप्रदेश जल संसाधन विभाग — जल संसाधन संबंधी प्रकाशन।
46. राष्ट्रीय जल विकास अभिकरण (NWDA) — विभिन्न नदी एवं जल-संसाधन अध्ययन रिपोर्टें।
47. तरुण भारत संघ, अलवर — वार्षिक प्रतिवेदन एवं परियोजना दस्तावेज।
48. चम्बल नदी बेसिन — अध्ययन रिपोर्ट।
49. धौलपुर एवं करौली जिलों के राजस्व एवं जल संसाधन अभिलेख।
50. भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) — कृषि, मृदा एवं जल संरक्षण संबंधी प्रकाशन।
51. राष्ट्रीय वर्षा आधारित क्षेत्र प्राधिकरण (NRAA) — वर्षा आधारित कृषि एवं जल-संरक्षण संबंधी रिपोर्टें।

IV. न्यायिक अभिलेख एवं विधिक स्रोत

52. **सर्वोच्च न्यायालय, भारत** — *In Re: Issues Relating to Definition of Aravali Hills and Ranges*, **2025 INSC 1338**, निर्णय दिनांक 20 नवम्बर 2025। इस निर्णय में अरावली Hills एवं Ranges की एक समान operational definition तथा सतत खनन प्रबंधन की दिशा पर विचार किया गया।
53. **सर्वोच्च न्यायालय, भारत** — अरावली Hills एवं Ranges से संबंधित आदेश/कार्यवाही, दिनांक 10 जनवरी 2024; अरावली की विभिन्न परिभाषाओं तथा खनन संबंधी विवादों की समीक्षा हेतु Central Empowered Committee को निर्देश।
54. **Central Empowered Committee (CEC)** — सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश के अनुपालन में अरावली क्षेत्र संबंधी रिपोर्ट, दिनांक 7 मार्च 2024; इसमें मानचित्रण, खनन-प्रभावित क्षेत्र, environmental assessment तथा भूजल पुनर्भरण क्षेत्र पर विचार किया गया।
55. **सर्वोच्च न्यायालय, भारत** — अरावली Hills एवं Ranges की परिभाषा से संबंधित आदेश/निर्णय, दिनांक 20 नवम्बर 2025; 100 मीटर local relief, supporting slopes तथा 500 मीटर तक संबंधित भू-भाग के मानदंडों से संबंधित अभिलेख।
56. **केंद्र सरकार की अरावली संबंधी समिति** — अरावली की operational definition पर रिपोर्ट, दिनांक 3 अक्टूबर 2025; समिति में पर्यावरण मंत्रालय, चार राज्यों के वन विभाग, FSI, CEC तथा GSI के प्रतिनिधि सम्मिलित थे।
57. **सर्वोच्च न्यायालय, भारत** — अरावली संबंधी आदेश, दिनांक 29 दिसम्बर 2025; 20 नवम्बर 2025 की व्यवस्था को आगे लागू करने पर रोक तथा स्वतंत्र एवं विशेषज्ञ समीक्षा की आवश्यकता से संबंधित आदेश।
58. **सर्वोच्च न्यायालय, भारत** — अरावली मामले में आगे की न्यायिक कार्यवाही, दिनांक 26 फरवरी 2026।
59. **सर्वोच्च न्यायालय, भारत** — अरावली संबंधी आदेश, दिनांक 25 मई 2026; multidisciplinary High-Powered Committee के गठन तथा स्वतंत्र, निष्पक्ष एवं विशेषज्ञ मूल्यांकन से संबंधित अभिलेख।
60. **High-Powered Committee on Aravalli Hills and Ranges** — सर्वोच्च न्यायालय द्वारा गठित बहुविषयी विशेषज्ञ समिति; भू-विज्ञान, मृदा, जैव-विविधता, वनस्पति एवं जीव-जंतु, खनिज संपदा तथा अन्य पारिस्थितिक पहलुओं के मूल्यांकन से संबंधित कार्य।
61. **सर्वोच्च न्यायालय के अरावली संबंधी न्यायिक अभिलेख** — दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान एवं गुजरात में अरावली की समान पहचान, पर्यावरण

संरक्षण, खनन नियंत्रण, भूजल पुनर्भरण तथा पारिस्थितिक निरंतरता से संबंधित विभिन्न आदेश एवं कार्यवाहियाँ।

V. इतिहास, संस्कृति एवं लोकज्ञान

62. ए. एल. बाशम — *द वंडर दैट वाज़ इंडिया* (हिन्दी अनुवाद)।
63. राधाकुमुद मुखर्जी — *भारतीय संस्कृति*।
64. वासुदेव शरण अग्रवाल — *भारतीय कला एवं संस्कृति*।
65. डी. डी. कौशाम्बी — *प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता*।
66. घाघ एवं भड्डरी — *घाघ-भड्डरी की कहावतें*।

VI. क्षेत्रीय एवं सामुदायिक स्रोत

67. राजस्थान सरकार — जल संसाधन एवं अरावली क्षेत्र से संबंधित विभागीय अभिलेख।
68. हरियाणा सरकार — अरावली क्षेत्र, वन एवं पर्यावरण संबंधी अभिलेख।
69. गुजरात सरकार — अरावली क्षेत्र एवं प्राकृतिक संसाधनों से संबंधित अभिलेख।
70. दिल्ली सरकार/वन विभाग — अरावली क्षेत्र, वन एवं भूजल पुनर्भरण संबंधी अभिलेख।
71. स्थानीय समुदायों, किसानों, पशुपालकों एवं पारंपरिक जल-ज्ञान से प्राप्त क्षेत्रीय अनुभव एवं मौखिक अभिलेख।

टिप्पणी: इस संदर्भ-सूची में वैदिक साहित्य, भारतीय ज्ञान-परंपरा, वैज्ञानिक एवं तकनीकी रिपोर्टों तथा न्यायिक अभिलेखों को एक समेकित ढाँचे में रखा गया है। पुस्तक में अरावली की परिभाषा, भू-विज्ञान, जल, भूजल, जैव-विविधता, खनन, पर्यावरणीय प्रभाव तथा न्यायिक प्रक्रिया पर चर्चा इन्हीं विभिन्न स्रोत-परंपराओं के समन्वय पर आधारित है। वर्तमान न्यायिक स्थिति को गतिशील मानते हुए 25 मई 2026 के उच्चाधिकार प्राप्त समिति (High-Powered Committee) संबंधी अभिलेख को भी संदर्भ-सूची में सम्मिलित किया गया है।

परिशिष्ट -II
शब्द-कोष

अ

अरावली -1–114
अरावली पर्वतश्रेणी- 1–3, 7, 10, 18–19, 31, 43, 55, 67, 79, 93, 105
अरावली रेंज- 2, 6, 10, 12–14, 19–21, 37, 53, 55–56, 63, 68, 70, 72, 75, 79, 87–88, 105–106
अरावली क्षेत्र- 1–16, 19–30, 34–42, 45–53, 55–73, 75–81, 83–90, 92–106, 108, 111, 113
अवैध खनन- 4, 10, 42–43, 65, 79–80, 83, 86, 92–93, 96, 98, 104, 106, 111
अधिकार- 16, 34, 56, 70, 81, 89, 99, 103, 109, 111–112, 114
आजीविका- 32–35, 40, 42, 51–52, 57, 60, 66, 78, 81, 86–87, 91–92, 104, 110, 112–113
आकलन-12, 37, 80, 83
आश्रय-3, 6–7, 10, 18, 31, 33, 36, 39, 61, 67, 78, 91

आ

आकलन-12, 37, 80, 83
आर्द्रभूमि-20, 24, 40, 48, 52, 57, 72, 84
आर्थिक गतिविधियाँ- 4, 14, 32–35, 38–40, 51–52, 57, 60, 64, 78, 81–82, 86–87, 91–92, 99, 104, 110

इ

इकोसिस्टम / पारिस्थितिक तंत्र- 1, 3, 6–8, 11–15, 19–21, 27–29, 33, 35, 47–48, 51–52, 60, 76, 84, 86, 91, 97, 100–104
इको-टूरिज्म-76, 85
इन्फिल्ट्रेशन-36, 45, 84, 97–98

उ

उपग्रह-15, 22, 40, 51, 69–70, 82–83, 87, 90, 95, 99, 111
उपजाऊ मैदान- 11, 27, 47, 56, 67, 79, 93, 105
उत्तर-पश्चिम भारत- 1, 5, 11, 14, 18–19, 31, 46, 56, 67, 79, 93, 105

ऊ

ऊँचाई- 2–3, 5–8, 10–13, 17–18, 26–29, 55–56, 61, 69–70, 75–77, 91
ऊपरी भू-भाग- 20–21, 27, 55, 69–73

ए

एल-नीनो-43–46, 49, 51–54
ऐतिहासिक-4, 7, 43, 70, 90, 103
अंततः-8, 18, 29, 40, 53, 67, 79, 93, 105, 113
अंतर-2, 7, 10, 13, 20, 27, 38, 55, 69, 73, 90, 101

क

कानून-1–8, 11–19, 21, 29–30, 40–42,

50, 53, 55–57, 61, 64–65, 67–68, 72, 76–77, 79–82, 89–93, 101, 103–106, 111, 114
कानूनी-2–7, 11–16, 19, 21, 29, 31, 40–41, 50, 53, 55–57, 61, 64–65, 67–68, 72, 77, 80–81, 90, 93, 101, 103, 105–106, 111
कटाव-3, 10, 25–26, 43–45, 47, 49, 51–53, 61, 69, 83, 91, 93, 112
वहन क्षमता-11, 13

ख

खनन-1–16, 19–30, 34–36, 38–43, 45, 48–73, 75, 77–81, 83–90, 92–106, 108, 111, 113
खनन प्रबंधन-9–16, 24–25, 56, 59, 63, 73, 83, 93, 105
खनन पट्टा-4, 9–16, 25, 30, 40, 55–58, 79–80, 93–96
खनन क्षेत्र-5, 10–12, 20, 25, 34–36, 58–63, 73–78, 88–90, 96–100

ग

गुजरात-14, 27, 31, 37, 46, 56, 67, 79, 93, 101, 105
गाँव-7, 15, 18, 27, 31–39, 41–42, 61, 64, 76, 85–86, 91–93, 98–99, 103–104, 110–113
ग्रीन वॉल-36, 84–85, 96

घ

घासभूमि-23, 40, 48–49, 51–52, 87, 91, 97

च

चट्टान-1, 10, 12, 19, 23, 32–33, 42, 45, 97, 107
चट्टानी क्षेत्र-1, 10
चराई-32, 38, 47, 61, 98
छोटी पहाड़ी-7, 10–12, 17–18, 21, 26–29, 55–56, 69–78

ज

जल-1–3, 5–8, 11–20, 22–24, 26–27, 29–31, 33–54, 56–60, 62, 64–67, 69, 77–81, 84–87, 89–93, 95, 97–101, 103–114
जलग्रहण क्षेत्र- 1, 3, 6–7, 12, 15, 17, 19, 22, 24, 29, 33, 37, 44, 49, 52–54, 56–57, 69, 76–77, 81, 84–86, 91–92, 95, 97–99, 102, 104, 106–108, 111, 113
जलवायु-5, 17, 19–20, 29, 43–54, 56, 65, 67, 87, 91, 93, 100, 104–105, 107, 109, 113
जलवायु परिवर्तन-43–54, 91, 104–105, 107, 109, 113
जल-संरक्षण-15, 20, 23–24, 31, 33, 36, 40, 45–53, 84, 87, 97–99, 107–112
जैव-विविधता-6–8, 11, 14–19, 22, 25, 27–31, 35, 37, 39–40, 42, 48, 50–52, 59–60, 62–67, 73, 76, 79–82, 84–98, 100–105, 109, 111–114

ट

टोपोग्राफी-69–75

ढ

ढलान-1–2, 5–6, 10, 12, 17, 19–20, 23, 26, 29, 33, 45, 55–56, 61, 68–70, 77–78, 84, 97

त

तरुण भारत संघ-2, 15, 32, 38–40, 61, 85–87, 107–108
तकनीकी-3, 7, 11, 13, 17, 65, 67, 70, 90, 107
तापमान-33, 35, 43, 47–48, 100, 108

द

दिल्ली-14, 25, 27, 31, 33, 35, 37, 46–47, 56, 67, 79–80, 86, 93, 100–101, 105
दबाव-5, 11, 31, 33, 43, 47, 51, 56, 59–60, 67, 78, 83, 90, 100
प्राकृतिक संसाधन-27, 38, 50, 87, 94, 109

ध

धूल-5, 14, 31, 33, 47, 51–52, 59–60, 64, 67, 78

न

न्यायालय-2–3, 6, 9, 13, 40–41, 53, 90
न्यायपालिका-8–9, 13–15, 17–19, 29, 34, 41–42, 45, 55, 60, 70, 78–79, 89, 93–94, 102, 105–106, 109
निगरानी-37, 51, 63, 83, 85–87, 90, 97, 99–100, 103–104, 111
निर्माण- 4–5, 7, 12, 14, 24, 34, 36, 41–43, 45, 49–50, 59, 66, 92, 95, 100, 107, 110
नदी-22, 76, 107, 111, 113

प

पहाड़ी-1–3, 5–6, 9–10, 12, 17, 19–21, 26–27, 31, 33, 36, 38, 41–42, 44–46, 55, 69, 81, 84–85, 91, 93, 97, 102–103, 112
पर्वत-1, 3, 7, 10, 18–19, 31, 43, 55, 67, 79, 93, 105
पर्यावरण-1–18, 20–21, 24–27, 31–35, 37–40, 42–43, 45, 53, 55–56, 58–59, 62, 65, 67, 71, 74, 76, 80–92, 99, 103, 106–113
पारिस्थितिकी-1, 3, 5–7, 11, 13–21, 29, 31–32, 42, 45, 52–53, 56, 62, 64–65, 67, 79–80, 91–93, 105–107
पुनर्भरण-3, 5, 11, 15, 17, 20, 23–24, 26, 31, 33, 35–36, 40, 44–46, 49–51, 56–60, 62, 64, 69, 73, 75, 77–78, 82, 84, 87, 90–93, 95, 97–98, 100, 103, 107–109, 111–112
पुनर्जीवन-41, 53, 85, 89, 96–97, 102–103, 107, 110, 114
पुनर्स्थापना-24, 28, 36–40, 48, 51–52, 59, 63–64, 73, 76, 83–90, 92–93, 95–104, 106, 110–113
प्रबंधन योजना-3–4, 9–16, 24–25, 56, 59, 63, 73, 83, 93, 105
प्रशासन-2–3, 13, 16–18, 27, 42, 56, 64–65, 69, 79, 101, 105

ब

बंजर भूमि-24, 28, 36–40, 59, 63, 83–90, 95–104

भ

भारत-1–114
भविष्य-1, 3, 5, 7–8, 10–11, 14–15, 17, 19, 24–26, 29, 31, 34, 39, 41–42, 50–51, 54, 59, 61–62, 64–66, 72, 75–78, 80–81, 83, 88, 90–

96, 98, 101–106, 109, 111–114
भूजल-3, 5, 7, 11, 15–18, 20, 22–26, 31, 33, 35–36, 38, 42–46, 49–53, 56–57, 59–61, 64–65, 67, 75, 77–78, 81–84, 87, 89–92, 95–97, 100, 103, 106–112
भूजल पुनर्भरण-5, 11, 17, 20, 23–24, 31, 33, 36, 45, 49–50, 52–53, 59–60, 64, 75, 77, 82, 87, 90–92, 95, 97, 100, 107–109, 112
भू-आकृति-2, 20–21, 23, 26, 55, 61, 67–73, 75–77
भू-विज्ञान-22–23, 27–28, 38, 50, 59, 73, 75–76, 95, 101, 109

व

वहन क्षमता-11, 13

श

शहरी-46, 65, 86, 98, 100, 105, 112
शुष्क क्षेत्र-11, 46, 48, 84
शासन-6–7, 27, 42, 56, 77, 80, 86–87, 90, 106

स

संरक्षण-1–18, 23–25, 28–29, 31, 33–42, 46, 48–51, 53–54, 60, 64–66, 73, 75–82, 84–87, 89–92, 94–96, 98–114
सतत खनन-9–14, 24–25, 56, 59, 63, 73, 83, 93, 105
सर्वेक्षण-69
संसाधन-22, 24, 27, 38, 50, 87, 94, 101, 109
संवेदनशील क्षेत्र-36, 58, 73, 83
समुदाय-15–16, 27, 30, 32, 34, 36, 39, 41–42, 48, 50, 53, 64–65, 76, 80, 85–86, 90–93, 98, 103–104, 106–108, 111–113
सहभागिता-36, 38, 41, 53, 60–61, 79, 82, 93, 99, 104, 106, 111
स्वतंत्र विशेषज्ञ-13–16, 25, 55, 58, 63, 65, 71, 77–78, 80, 86–87, 94, 98, 100, 111
सुप्रीम कोर्ट-1–2, 4, 6, 9–16, 19–31, 33–34, 38, 45, 47, 50, 55–59, 61–63, 67, 69, 71, 73–74, 77–81, 83, 86, 88–89, 93–96, 100, 103, 106, 109, 113

ह

हरियाणा-14, 27, 31, 33, 36–37, 46–47, 56, 67, 79, 86, 100–101
हरित फेफड़े-11

क्ष

क्षरण-3, 10, 25–26, 43–45, 47, 49, 51–53, 61, 69, 83, 91, 93, 112
क्षतिग्रस्त क्षेत्र-28, 36, 59, 63, 83–90, 95–104

ज्ञ

ज्ञान- 6, 14–15, 18–19, 26, 30, 41, 66, 76, 79, 82, 89–90, 92, 98, 101–102, 104, 106–108, 111, 113–114

अरावली : भारत की जीवन-रेखा —

न्यायिक, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और पर्यावरण संरक्षण

ISBN: 978-93-6581-307-4

पुस्तक मूल्य: भारत **₹299;** USD **$3.15**

NATALS **Natals Publication.**
UDYAM-DL-02-0037614
Chhatarpur, SouthWest Delhi-110074,India
E-mail:natalspublications@gmail.com

Copyright © 2026 natals.in